

विषय प्रश्नोत्तर



**सामयिक प्रकाशन**

3543, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)  
फोन : (011) 3282733 ✆ 2262499 ✆ 2175472



GIFTED BY  
RAJJA RAMMOHUN ROY  
LITERARY FOUNDATION  
Block-DE-34 Sector I Salt Lake City.  
CALCUTTA - 700084

# आदित्य लक्ष्मी

---

विष्णु प्रभाकर

ISBN : 81-7138-000-X

मूल्य : सौ रुपये  
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज  
सामयिक प्रकाशन  
3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,  
दरियागंज, नई दिल्ली-110002 (भारत)  
संस्करण : 2001  
सर्वाधिकार : विष्णु प्रभाकर, नई दिल्ली  
कलापक्ष : चेतनदास  
शब्द-संयोजक : कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज  
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-2  
मुद्रक : अजित प्रिंटर्स  
मौजपुर, दिल्ली-110053

---

AAKHIR KYON (Short Stories)  
by VISHNU PRABHAKAR                      Price : Rs 100 00

Published By . SAMAYIK PRAKASHAN  
3320-21 Jatwara, Netaji Subhash Marg,  
Daryaganj, New Delhi - 110002 (INDIA)  
Te (011) 3282733 327075 3270716

उन अनाम निर्दोष शहीदों के नाम  
जिन्होंने इस समरया की बलिबेदी पर  
प्राण विसर्जित कर दिये

और

उन चिन्तकों के नाम भी  
जिन्होंने इस समरया की गहराई में  
जाने की कोशिश की ।

## भूमिका

इस सग्रह में जो कहानियाँ संकलित हुई हैं, उनमें से लगभग सभी किसी न किसी रूप में पहले भी प्रकाशित हो चुकी हैं। उनमें से बहुत सग्रह अब अप्राप्य हैं। इसलिए इस सग्रह की आवश्यकता अनुभव की गई।

इन पंद्रह कहानियों में पांच कहानियों का सबध सीधे भारत विभाजन की त्रासदी से है और वे सारी कहानियाँ सत्य पर आधारित हैं। मैं नहीं जानता उनके पात्र अब कहा है। पर एक दिन उनसे या उनके रिश्तेदारों से मेरी भेंट निश्चय ही हुई थी। मैं स्वयं नहीं जानता कि मैं इस समस्या की गहराई में जा सकता या नहीं। अभी पिछले दिनों हिंदू-मुसलमान के स्थान पर हिंदू और सिखों ने उसी समस्या को बड़े भयानक रूप में हमारे सामने उभार और स्पष्ट रूप से इस ओर संकेत किया कि हिंदू और मुसलमान या हिंदू और सिख होना, इस समस्या के मूल में नहीं है। मूल में है मानव-स्वभाव की विरूपता। मूल रूप में समस्या जो प्रश्न डाठाती है वह यही है कि आखिर मनुष्य लड़ता क्यों है? क्या मात्र धर्म के नाम पर या धर्म को बहाना बनाकर बहुरूपी सत्ता को हत्याने की चाह के रूप में। इस संग्रह की अंतिम आठ कहानियाँ कहीं न कहीं इस प्रश्न को उभारने के प्रयत्न में लिखी गई हैं। वे भी सब सच्ची कहानियाँ हैं। कुछ अक्षण्णः सच्ची है और कुछ सत्य घटनाओं के आधार पर लिखी गई हैं। कुछ कहानियों में मैं स्वयं कभी एक पात्र हूँ। जैसे—‘अधूरी कहानी’ में और ‘मुरब्बी’। ‘सफर का साथी’ का प्रत्यक्ष दृष्टा भी हूँ मैं। उनका संबंध किन्हीं दगों से नहीं है, बल्कि युग-युग से चली आई उन कथाओं से है जिन्होंने आदमी को आदमी के पास लाने की कोशिश के बजाए उसे निरंतर दूर करने की कोशिश की। गले लगाकर भी गला काटने की चाह उसमें बराबर बनी रही।

‘आखिर क्यों’ इस कहानी में शकर इसी बात को लेकर प्रेरणा है और इसीलिए वह उसको मारने आने वाले हत्यारे को अपने व्यवहार से सोचने को विवश कर देता है। निश्चय ही कुछ मित्र हृदय परिवर्तन की बात को मेरी कमजोरी मानेगे। उस दोष को स्वीकार करते हुए मैं इतना ही कहूँगा कि न सही वह एकमात्र रास्ता, पर जो भी रास्ता है वह उसी के आसपास से होकर जाता है।

‘अधूरी कहानी’ का वह मासूम अहमद हिंदू-मुसलमान के बीच के फासले को नहीं देख पाता। उसे तो बस अपने दोस्त की हमदर्दी पर नाज है। ‘मुरब्बी’ कहानी में भी वही दोस्ती दो निर्मल हृदय बूढ़ों के बीच फलती-फूलती है। नितांत एक बालक के रूप में मैंने उन दूश्यों को देखा है, और तभी से मेरे मन में यह प्रश्न बार-बार उभरा है, ‘आखिर क्यों हम अपनी दुर्बलताओं को मत और मनहब के पर्दे में छिपा लेते हैं।’

‘मेरा बेटा’ कहानी में यही प्रश्न तो उभर कर आता है। मजहब बदल जाने के

बात क्या रिश्ते भी बदल जाते हैं? कितनी कच्ची नीव पर खड़े हैं वे रिश्ते। 'इतनी सी बात' कहानी की घटना बहुत पुरानी नहीं है। लेकिन वह इस बात का प्रमाण अवश्य है कि स्थापित स्वार्थों की गुजल में निकलने का रास्ता है। असलम जावेद का यदि अपना मजहब याद आ जाता तो विनीता की सहायता कैसे कर पाता। उसे तो याद आया बस इंसानी रिश्ता ही। इसी इंसानी रिश्ते की खोज करती हैं ये कहानियाँ।

'सफर के साथी' इसी इंसानी रिश्ते की बुनियाद पर खड़ी हुई है और मैं साक्षी हूँ इस कहानी की घटना का। तब मेरे मन में कितनी खुशी उमड़ी थी, मैं कह नहीं प्रक्रिया और मुझे विश्वास हो गया था कि इंसानी रिश्ते सबसे ऊपर हैं। वही खून को बदलों के निर्मल और प्राणदायी पानी में बदल सकते हैं। 'आज होली है' यह कहानी भी यही प्रमाणित करती है कि इंसानी रिश्ते सब समस्याओं से ऊपर हैं। काश हम इस सत्य को पहचान सके तो 'ये बधन' कहानी की समस्याएँ हमारे सामने आएगी ही नहीं।

अपनी कहानियों के बारे में मैंने शायद ही कभी कुछ कहा हो। यहाँ भी मैंने उनकी पृष्ठभूमि ही बताई है। मैंने हमेशा माना है कि मत-मातातर और राजनीति इनसे बचकर अगर हम सोचेंगे, तो शायद रास्ता नजर आएगा। वैसे रास्ता तो अब भी नजर आता है, लेकिन उस पर चलने का साहस हम नहीं बटोर पा रहे।

मैं जानता हूँ छूछी भावुकता और छूछे आदर्शवाद का दोष तो मेरे नाम के साथ चम्पा हो चुका है। मैंने अपना बचाव करने के लिए ये शब्द नहीं लिखे। मैं जानता हूँ मुझे कहानी लिखना भी नहीं आता, लेकिन फिर भी मैं लिखता रहता हूँ। मित्रों की सलाह मानकर मुझे अब लिखना बद कर देना चाहिए। फिर भी लिखता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि कला और गहराई इन दोनों शब्दों का मेरी कहानियों से कोई संबंध नहीं है, फिर भी मुझ से चुप नहीं रहा जाता। यदि यह अपराध है तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ। मैंने कभी कोई दावा नहीं किया, अब भी नहीं करूँगा, पर लिखता अंतिम क्षण तक रहूँगा।

समीक्षक और आलोचक पूर्ण स्वतंत्र हैं इनका मूल्यांकन करने के लिए। मैं बड़ी विनम्रता से कहूँगा कि यह सब कुछ मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट करने की भावना से लिखा है, किसी के प्रति आक्रोश के कारण नहीं। जो मेरे बारे में लिखते हैं, चाहें कुछ भी लिखते हैं, वे मेरे मित्र ही हैं। अगर मित्र न होते तो डा जानसन की इस उकित 'यदि तुम किसी लेखक को मारना चाहते हो तो उमकी उपेक्षा करो।' (If you want to kill a writer, ignore him) पर अमल करते, मेरे मित्रों ने मेरी उपेक्षा नहीं की। इसीलिए नहीं कि कि वे मुझे प्यार करते हैं।

मुझे यह सब नहीं लिखना चाहिए था, पर लिख गया, इसके लिए क्षमा नहीं मागूँगा।

शेष पाठक जाने।

## कथा-क्रम

एक और कुंती	9
मृत्युंजय	24
मैं जिंदा रहूँगा	32
मेरा वतन	43
स्यापा मुका	51
अगम-अथाह	56
सत्य को जीने की राह	64
आखिर क्यों	69
अधूरी कहानी	77
इतनी-सी बात	83
मुरब्बी	91
सफर के साथी	98
आज होली है	104
ये बंधन	112
मेरा बेटा	121

## एक और कुंती

प्यारे दोस्त।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यह पत्र लिखने का निर्णय करने में मुझे पूरा एक वर्ष लगा। और अनायास यह घटना न घटी होती तो शायद कभी न लिख पाती। मैं नहीं जानती कि आपको क्या कहकर संबोधित करूँ। आज निश्चय करके बैठी थी कि पत्र लिखकर उठूँगी। इसलिए सहसा जो सबोधन सूझा वही लिख रही हूँ। उसके पीछे जानबूझकर दिया हुआ कोई अर्थ नहीं है। चिट्ठी लिखने का एक और भी कारण हो सकता है। उसमें मन उत्तर आता है। मैं मन खोलना चाहती थी किसी के समने।

आपको याद होगा कि लगभग दो वर्ष पहले आप इस निकेतन में आए थे। तब मैं नई-नई आई थी और नहीं जानती थी कि मैं जीती हूँ या मर चुकी हूँ। जीना-मरना केवल सांस के आधार पर तो नहीं होता।

लेकिन मैं इस मीमांसा में नहीं उलझना चाहती। आदमी गुत्थी सुलझाते-सुलझाते स्वयं उसमें उलझ जाता है। इसी उलझन से मुक्ति पाने के लिए तो मैंने साल-भर तक अपने से सघर्ष किया है। नर-नारी के सर्वधों को लेकर मासिक 'प्रज्ञा' में मैंने आपका लेख पढ़ा था। उसके तुरंत बाद मैंने चाहा कि आपको पत्र लिखूँ। वह लेख पढ़कर मेरे कैसी-कैसी न हो आई थी। उसी 'होने' के परिणामस्वरूप यह पत्र है। बहुत-से लोग आते हैं यहाँ। बहुत-सी बातें कहते हैं। विरह-मिलन के दृश्य भी बहुत देखे हैं मैंने। व्यापार भी होता है यहाँ। लेकिन आपके साथ ऐसी कोई बात नहीं हुई। फिर भी मुझे आपकी बराबर याद आती रही। क्यों? क्यों महसूस किया आपके साथ इतना अपनापन।

आपको बहुत अच्छी तरह याद होगा कि तब यद्यपि बादला से मुक्त धुला-धुला आकाश बाहर आने का आमंत्रण दे रहा था, लेकिन मैं एक कोने में पांच बच्चों से घिरी हुई, एक जिंदा लाश की तरह पड़ी थी। मुझे दिखाकर सचालिका ने आपसे कुछ कहा था। सुन कम पाई थी, समझी बहुत कुछ थी। जिस समय आप मेरे पास से होकर चले गए और ठीक उस खिड़की के पीछे आकर खड़े हो गए जहाँ मैं लेटी हुई थी, तब मुझे मालूम हुआ कि आप कौन हैं। मुझे देखकर आपके चेहर पर कोई भाव नहीं आया था या आपने आने नहीं दिया था, मैं नहीं जानती। लेकिन जब आप पीछे खड़े थे तब मैंने आपकी काफी बाते सुनी थी। सचालिका ने आपसे कहा था, "देखिए

बहुत लोग आते हैं यहा और बहुत कुछ लिखते हैं यहा के बारे में लेकिन मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, इसलिए करती हूँ कि आप लेखक हैं और लेखक संवेदनशील होता है, आप इस नारी के बारे में कुछ न लिखिए ॥

आपने कहा था—यद्यपि उस कहने के बीच मेरे कई क्षण बीत गए थे और मैं जानती हूँ, उन क्षणों मेरे आपके हृदय मेरे समुद्र-मथन हुआ था—आपने दीर्घ निःश्वास लेकर एक ही शब्द कहा था—‘अच्छा’। लेकिन इस एक शब्द के पीछे कितनी वेदना कितनी अनुभूति और कितनी विवशता थी। आपके चेहरे पर व्यक्त वही त्रासद विवशता धीरे-धीरे मेरे समूचे शरीर में फैल गई थी। मैं तड़पकर उठ खड़ी हुई थी। मैंने खिड़की की सलाखों को पकड़कर उस ओर झाका था। तब आप धीरे-धीरे संचालिका के साथ बाहर जा रहे थे। मैं कई क्षणों तक ठंडी सलाखों पर जलते आसुओं से भरा अपना चेहरा टिकाए रही। द्वार के पास पहुँचकर आप मुड़े। मुझे देखने के लिए नहीं बल्कि संचालिका को नमस्कार करने के लिए। लेकिन आपने मुझे न देखा हो, मैंने आपको देख लिया था और उसी क्षण मैं समझ गई थी कि आप भले ही मेरी कहानी को कागज पर न उतार सकें पर अपने अंतर में उसे निरंतर झोलते रहेंगे।

संचालिका ने आपको मेरी कहानी बताई होगी। लेकिन क्या सचमुच बता सकी होगी? कोई नहीं शब्द दे सकता मेरी व्यथा-कथा को। मैं भी नहीं। सहते-सहते अनुभव करने की मेरी शक्ति समाप्त हो गई है। पर क्या आप विश्वास करेंगे कि आपका वह लेख पढ़कर मैं स्वयं पहली बार अपनी कहानी को समझ सकी। जानती हूँ, आपने वह लेख मेरे लिए नहीं लिखा था। आपने मात्र अपनी सात समंदर पार के किसी देश की यात्रा के संस्मरण लिखे थे। सात समंदर पार के बारे में मैंने काफी कहानियां अपनी नानी से सुनी थीं—एक साहसी राजकुमार और एक सुंदर राजकुमारी की कहानियां। लेकिन आपने जो लेख लिखा था उसमें न राजकुमार की चर्चा थी, न राजकुमारी की। फिर भी उसमें अद्भुत साहस और अनोखे सौदर्य की कथा गर्भित थी। नर-नारी के संबंधों की कथा...।

मेरी कहानी उन्हीं संबंधों की व्यथा-कथा है। मैं एक तथाकथित सुसंस्कृत परिवार की बेटी और एक उतने ही सुसंस्कृत तथा संपन्न धराने की बहू थी। स्वयं सुटर मोहक और आकर्षक। उस दिन भी, बेशक वह ठंडा था, लेकिन एक अनोखा आकर्षण पाया होगा आपने मेरी उदास-उनीदी आखो में। इन्हीं आंखों के रहने तो मैं बार-बार छली गई। जिस समय मैं उन्नीस वर्ष की थी उस समय कैमी लगती थी, इसकी कल्पना आप नहीं कर पाएंगे। सौदर्य को शब्दों में बांधना एक बात है, उसे सचमुच अनुभव करना दूसरा बात है। मैं आकंठ ऐश्वर्य और विलास में डूबी अपने पति के साथ उस अनूठे जीवन को भोग रही थी और समय एक सुनहरे सपने की तरह बीत रहा था।

उन्हीं दिनों सहसा मेरे प्रांत के भाग्याकाश पर विपत्ति के बादल फट पड़े। वे कैसे

दश का दुर्भाग्य बन गए, यह आपको बताने की आवश्यकता नहीं है। उम महानाश में कौन कहा गया, किसके साथ क्या बीती, इतिहासकार इसको खतियाकर कभी नहीं देख पाएगे। देखना चाहिए भी नहीं। अपने कलक को अमर कर देना क्या अच्छी बात है? काल ने बड़ी नृशस्ता के साथ हमें इस बात का अहसास करा दिया कि उपर्युक्त अवसर आने पर एक क्षण में ही प्रभु की सर्वोत्तम कृति मानव, राक्षस में रूपातरित हो रहती है।

मैं फिर उलझने लगी। अंदर जो घटाटोप है, लाख प्रयत्न करने पर भी वह निरतर विस्तृत होती दरारों में होकर चारों ओर बिखर जाता है। अचानक एक दिन भयकर आक्रमण हुआ हमारे घर पर। कैसे शब्द दूर उस बीभत्स दृश्य को। घर के अधिकाश सदस्य शरणार्थी शिविर में जा चुके थे। बस, मैं और मेरे पति रह गए थे वहाँ, अत मे जाने के लिए। उन्होंने साहस के साथ मुकाबला किया पर, पर उन दर्रिदों ने उन्हें मार डाला और फिर उनकी लाश पर बलात्कार किया। मेरे साथ

एक सास मे पागल की तरह बोल जाता है आदमी, वैसे ही एक सास मे मे इसे लिख गई। दूसरा सास लेती तो लिख न पाती। जब होश आया तो मैं एक छोटे से, कच्चे, गदे मकान मे लेटी हुई थी—नितात अकेली, असहाय, अपग। प्राणहीन हो गए थे मेरे सारे अग। मैं उन्हें हिला नहीं मिकती थी। मैंने सोचा, शायद मैं मर गई हू आर अपने पापो का दंड भोगने के लिए मुझे नरक मे ढकेल दिया गया है। कोई रात को स्वप्न में नदन कानन के सपने देखे और सबेरे अपने को नरक मे पाए, कैमा आघात लगेगा उसे। लेकिन वह नरक भी नहीं था व्ययोकि धीरे-धीरे प्रकाश मेरे चारों ओर फैलता जा रहा था, मेरी चेतना लौट रही थी। मैं उठने का प्रयत्न करूँ कि तभी किवाड़ खोलकर एक व्यक्ति मेरे सामने आ खड़ा हुआ। कई क्षण मुझे देखता रहा अपलक। मैं भी देख रही थी उसे और पलक झापक रही थी बार-बार। वह बोला, युगो बाद कही दूर से, “कैसी तबियत है?”

मैं एकाएक चीख उठी, “मैं कहा हूँ? यह कौन-सी जगह है? तुम कौन हो?”

वह एक स्वस्थ व्यक्ति था। उसके चेहरे पर क्रूरता नहीं थी। वेदना के ऊपर आरोपित कठोरता थी। उसने धीरे-धीरे बताया, “मैं नहीं जानता तुम कौन हो, तुम्हारे घर वाले कहाँ हैं? गुंडे कुछ औरतों को भगाकर लिए जा रहे थे। लेकिन फौज ने उन्हें ढूढ़ लिया। उस मुठभेड़ में बहुत-सी लड़किया इधर-उधर भाग गई। जब सब लोग चले गए तो मैंने तुम्हें एक खेत में बेहोश पड़े पाया। मैं कौन हूँ, यह जानने की कोशिश मत करो। अभी इतना समझ लो, मेरा नाम नूर है। तुम बताओगी तो मैं तुम्हारे घर वालों को खोजने की कोशिश करूँगा।”

न जाने कैसी संवेदना थी उसके इन सीधे-सच्चे शब्दों में। मेरे पड़ी और सुबकियों के बीच उसे अपनी दास्तान सुनाने लगी। कई क्षण वह कुछ नहीं बोला, जैसे कुछ अकथनीय कहने के लिए साहस बटोर रहा हो। कई क्षण बाद धीरे-धीरे उसने

कहा, “मैं जानता हूँ, उम्म शहर में अब तुम्हारे घर-परिवार का कोई आदर्मा नहीं बचा है। जाति का भी नहीं। कुछ शरणार्थी शिविरों में चले गए हिंदुस्तान जाने के लिए, कुछ नफरत और हिंसा के संलाप में बह गए ।”

मैं नड़प उठी। मैंने चीखते कहा था, “क्या मैं नहीं जा सकती शिविर में? क्या आप मुझे यहाँ से निकल जाने में भद्र नहीं कर सकते? क्या आप कृपा कर, ”

वह दोबार के सहारे खड़ा था। थोड़ा पास आया मेरे। बोला, पहले की तरह बहुत धीमे-धीमे, “अभी कुछ नहीं हो सकता। चारों ओर दहकता हुआ लाबा फेलता जा रहा है। किसी अंधेरी रात में तुम्ह अपने घर ले जाऊगा। तुम्हारे लिए नए कपड़े लाया हूँ और तुम अब आयशा हो।”

“क्या?”

“हा, अब तुम आयशा हो, समझती हो?”

प्यारे दोस्त! वे कपड़े पहनते न पहनते मैं कितना रोई थी। फिर भी हुआ वही जो नूर ने चाहा था। आने वाली पहली अमावस्या की रात में मैं माना हमेशा के लिए नकाब पहनकर उसके घर चली गई... मर न सकी। मर जाना चाहिए था न, पर अपने स अजनबी होकर रहना मरने से कहीं त्रासद होता है। मैं जानती थी कि नूर ने मुझे इसीलिए बचाना चाहा था कि मैं नारी थी और सुदर भी, नर-नारी का यही सबध शाश्वत है न.

और एक बात बताऊँ, नूर अविवाहित और हिंदू था। कई दिन बाद पता लगा था मुझे। वह अपनी जमीन-जायदाद बचाने के लिए मुसलमान बना था।

बहुत लंबी कहानी है मेरी। टुकड़ो-टुकड़ों में कह पाऊगी। आप चाहे ता उपन्यास लिख सकते हैं। पर मेरा अनुरोध है, न लिखिए। कोई कैसे शब्द दे सकता है उस भावना को जो मेरे मन में तब उठी थी जब मैंने अनुभव किया कि मैं मां बनने वाली हूँ। दर्द और नफरत का सैलाब मेरे अस्तित्व को लील गया था तब। मैंने पेट पर मुक्के मार-मारकर गर्भ गिराने की नाकाम कांशिश की थी पर नूर सजग था। मैं अपने मसूबे पे कामयाब नहीं हो सकी। सच तो यह है कि मेरे अपने अंदर कोई था जो मेरे मसूबे को नाकाम बनाने पर तुला हुआ था। अपने ही ‘मैं’ के दोहरेपन को हम कब समझ पाते हैं?

मेरा एक और बेटा था जिसे मैं पीछे छोड़ गई थी। उसकी याद करके अकसर मैं रोती थी। पनि तो अब आने वाले नहीं थे पर क्या मैं अपने बेटे को भी नहीं देख पाऊगी। लेकिन मैं तो नए बच्चे की बात बता रही थी। कहाँ मेरे आया यह, कैसे आया? नूर तो उस सारे ममय मेरे पास तक नहीं आया है प्रभु। तुम हो क्या? सचमुच हो

कितना पुकारा था मैंने उस निर्मम को पर वह नहीं पसीजा और समय धीरे-धीरे फिसलता रहा, और मुझे लगता रहा, जैसे वह ठहर गया है। मेरे चारों ओर एक सुलगता अग्निकाढ़ है जिसमें से उठती आदर्मी के रक्तमांग की चिडायध मेरे नासा-रधो मे

घुसती जा रही है। मैं सोते-सोते चीख उठती। मैं बाहर भागने का पागल हो उठती लेकिन इस विभीषिका के बीच मेरे नूर था कि अद्यि चड़ान की तरह खड़ा रहा। वह मेरे पास नहीं आता था, पर दूर भी नहीं जाता था। उसने मेरे आसू पोछने की भरसक कोशिश की। मेरे परिवार का पता लगाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल नहीं हो सका। तब एक दिन वह मेरे पास आकर बैठ गया। बोला, “धीरे-धीरे आग बुझ रही है। तुम लोगों को निकालने के लिए सेना आती रहती है। चाहो तो तुम भागत जा सकती हो।”

आश्चर्य। मैं तब पुरइन के पते की तरह काप उठी थी। और मैंने चीखकर कहा था “नहीं-नहीं, मैं नहीं जा सकती। मैं नहीं जाऊँगी।”

तब पहली बार उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर थपथपाया। उस स्पर्श के साथ न जाने कैसे भीगी-भीगी सबेदना मेरी रग-रग में प्रवाहित होने लगी। मुझे अच्छा लगने लगा। उस दिन वह चुपचाप चला गया। लेकिन तीसरे दिन, पाचवे दिन, सातवें दिन उसने फिर वही कहा। मैं निरंतर लड़ती रही अपने-आपसं। पढ़हवे दिन आकर वह बड़े प्यार से बोला, “चलो, वे लोग बहुत पास हैं। मैं तुम्हें छोड़ आता हूँ। तुम न जाना चाहो तो मैं उन्हें यहीं बुला लाऊँगा।”

मैं अब पूरों तरह शांत थी। पूरी दृढ़ता से मैंने जवाब दिया, “मैं नहीं जाऊँगी। तुम सब कुछ जानते हो। फिर भी मुझे जाने को कहते हो क्यों?”

तब तक वह मुझे अपनी कहानी सुना चुका था।

कई क्षण मेरी ओर देखता रहा। उसके बाद उसने कभी मुझसे जाने के लिए नहीं कहा। अब मुझे जीवन-भर यही रहना था।

मेरे दोस्त! घोर अवसाद मेरे ढूबे रहने के बावजूद उस दिन मेरे उदास चेहरे पर पहली बार मुसकराहट उभरी थी। इसी के साथ शुरू हुआ, मेरी कहानी का दूसरा अध्याय। एक दिन मैं मां बनी। अत्याचार की राह आए उस नए शिशु को देखती तो मेरी सुबकियां फूट पड़ती। लेकिन उस मासूम की दृष्टि मेरे न जाने क्या था कि एक निराली पीर कसक उठती मेरे अंतर मेरे और मुझे उन्माद से भर देती। नारी के कारावाम की कहानी यही से आरभ होती है।

मेरे दोस्त! क्या आप विश्वास करेंगे कि छह माह बीतते न बीतते मैं फिर मां बनने को हुई। मैं अब नूर की पत्नी थी। उसने मेरे बच्चे को अपना लिया था और मैंने अपने अंतर से मिछले जीवन को धो-पोछ डाला था। धो-पोछ डालने की यह प्रक्रिया कितनी मर्मातिक थी। उसकी अब क्या चर्चा करूँ। पति चले गए थे। उनका परिवार मुझे स्वीकार नहीं कर सकता था। बस, बेटे की याद आती थी। कैसी बिंदंबना है जो प्यार की राह आया वह दूर हो गया और जो..

अब वह कहानी नहीं। लेकिन मेरे कहने मात्र से तो कहानी खत्म नहीं हो सकती। यहा के लोग जानते थे कि नूर जमीन-जायदाद को बचाने के लिए मुसलमान

बना ह। धीरे धीरे व उस पर दबाव डालने लग। आर जस ही उसन प्रतिराध करने की कोशिश की, उन्होंने उसे मार डाला। क्षत-विक्षत तन-मन लिए मैं फिर दोराहे पर खड़ी थी—पापाणवत्। नारी भी तो जमीन ही होती है न और जमीन के पास उसकी अपनी काई आवाज नहीं होती। अनन्पूर्णा होकर भी वह सपत्ति होती है किसी नर की

सातवें दिन एक और नूर की पदचाप बिलकुल मेरे पास आकर रुकी। मैंने आखे खोल दी। वह मेरे पास बैठ गया। बोला, “फारुखी हू। यहा कालेज में पढ़ाता हू। मुझे बहुत दुःख है कि नूर बेगुनाह मारा गया। वह मेरा दोस्त था। उसने मुझे यह मकान देने का बायदा किया था। नहीं, डरो नहीं, मैं तुम्हें जाने के लिए नहीं कहूगा। तुम यही रह सकती हो।”

मैं पूरी तरह मोहताज बनी आखे फाडे-फाडे छत की ओर देखती रही। मैं जानती थी, मैं खूबसूरत हू और जवान हू। इन दो-ढाई वर्षों में मैंने क्या कुछ नहीं भुगता। लेकिन यौवन का ज्वार तो जैसे मेरे शरीर मे अड़ी मारकर बैठ गया था। मौत बार-बार पास आकर लौट जाती थी। इस बार भी लौट गई। मैं एक जिटा लाश की तरह जीती रही।

मेरे दोस्त। आपने नर-नारी की समानता के लिए एक-दूसरे के आकर्षण से मुक्ति की बात कही है, पर क्या आप विश्वास करेंगे कि प्रोफेसर फारुखी के इसी आकर्षण ने मुझे एक बार फिर जीवनदान दिया। एक बार फिर मेरे अगो मे वसत की बयार बहने लगी। हर औरत के अंतर में बगवर एक मर्द रहता है। फारुखी सचमुच मर्द था। और शायर भी। उसके अनेक अशआर आज भी मेरे अंतर को अलोकित करते रहते हैं। उसने मेरे साथ निहायत शरीफाना बरताव किया। उसने मेरे दोनों बच्चों को किसी तरह का अभाव नहीं खटकने दिया। मोहब्बत और इनसानियत की हवा पाकर वे जैसे पनप उठे। और पनप उठा मेरा अतर्मन। दिलों का रिश्ता शरीर के रिश्ते से जुड़ गया। उसने मुझमे बकायदा निकाह किया। मेरा नाम सुरैया रखा। चौथा पुरुष था वह मेरे जीवन में। आपने लिखा है, पश्चिम की नारी सहज भाव से कह सकती है, ‘मेरा चौथा पति।’ प्राचीन भारत में भी शायद कुंती ने कहा था, ‘इन्द्र चौथा पुरुष है।’ और दौपदी तो एक समय पर पांच पतियों की प्रागबल्लभा थी। वे सब हमारी प्रातःस्मरणीय पूज्य हैं। लेकिन क्या मैं कभी यह कह सकूँगी, ‘फारुखी मेरा चौथा पुरुष था?’ मैं चौथी बार मा बनने जा रही हूं।

समय के प्रवाह में नर-नारी के संबंध कहां से कहा बह गए!

मैं फिर उलझने लगी तर्कजाल में लेकिन एक बात मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकती हू, यदि मैं अपने पहले पुरुष के साथ रहती होती तो मेरे चौथी बार मा बनने पर आनंद और उल्लास से बातावरण महक उठता। अजस्त्र आशीर्वादों की वर्षा होती मुझ पर। मातृत्व के गौरव से मेरा भाल चमक उठता। मा मैं अब भी बनती थी, पर गौरव करने लायक कहाँ कुछ नहीं होता था। होती थी एक विवशताजन्य उदासीनता।

लेकिन मुझे यह स्वीकार करने में आज तनिक भी लज्जा नहीं है कि उम पठान का छोड़कर जिसका मेरा नाम नहीं जानती, नूर और फारुखी, दोनों ने मुझको प्यार दिया। जब-तब छा जाने वाले गहरे अवसाद के बावजूद मैंने उस प्यार को जिया। मन की उन बातों को छिपाने का आज कोई कारण नहीं है। किसके लिए छिपाऊंगी इस दुचित्तेपन को? मनुष्य केवल आत्मिक शक्ति के सहारे नहीं जीता, बल्कि उसे उस शक्ति की भी आवश्यकता होती है जो उसे दूसरों की हमदर्दी में से बिलती है।

लेकिन यह आनंद भी स्थायी नहीं हो सका। अचानक एक दिन फारुखी घबगया हुआ आया। बोला, “सुरेया! दुश्मन कामयाब हो गए। मुझे यहां से दूर एक कालेज में बदल दिया गया है। मुझे आज ही जाना होगा।”

हठात् जैसे मैं खौलते कढ़ाह मेरि पड़ी हूँ। चौखंडी उड़ी, “नहीं, मैं अकेली नहीं रह सकती। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।”

पर मैं कैसे जा सकती थी? मैं अभी-अभी चौथी बार प्रोफेसर फारुखी के बेटे की मा बनी थी। उस रात हम सो नहीं सके। तमाम समय उसे बीतते देखते रहे और वह सात्वना देता रहा। सबेरा होते न होते वह चला गया। जाते समय उसने सच बात बताई, “मैं आऊँगा। मैं जानता हूँ, यह सब जालसाजी है। मुझसे यह मकान छीन लिया गया है। मुझ पर इलजाम लगाया गया है कि मैंने नूर को मारकर उसकी बीवी को नाजायज तौर पर रखा हुआ है। और कि तुम हिंदुस्तान में भगाई एक एक हिंदू औरत हो। मैं परदेशी हूँ। सब हाकिम उनकी तरफ हैं। लेकिन मैं आऊँगा। मैंने तुम्हारे लिए सब इतजाम कर दिए हैं। आया आती रहेगी तब तक।”

उसने अतिम बार मेरा चुबन लिया और देर तक उंगलियों को पकड़े मेरी आँखों में झाकता रहा। उम दृष्टि से बहते प्यार, दर्द और क्षमा की एक गुनगुनी धारा ने मेरे बाध को तोड़ दिया। उसके जाते ही मैं सिसकने लगी।

तीसरे दिन जब मैं अपेक्षाकृत शांत थी, मैंने मुजफ्फर को अपने सामने पाया। उसकी आँखों में शरारत थी और होंठों पर भी मंद-मंद मुसकान। वह मुझसे इजाजत लेकर अदर आया। उसने धीरे-धीरे कहा, “मुझे बहुत अफसोस है, प्रोफेसर साहब तुम्हे छोड़कर चले गए। उम्मीद नहीं कि वह अब लौटेंगे। क्या तुम हिंदुस्तान जाना चाहोगी?”

मैं एक बार फिर जिदा लाश में बदल चुकी थी। फिर भी मैं झूठ नहीं बोल सकी। कई क्षण देखती रही उस पुष्ट कधो वाले पंजाबी युवक को। फिर बोली “मैं कही नहीं जाना चाहती। बस, मरना चाहती हूँ।”

वह मुसकराया, “ठीक है, मैं दो दिन बाद तुम्हे अपने गांव ले जाऊँगा। वहा तुम्हे यह जाहिर करना होगा कि तुम हिंदुस्तान के लोगों की सताई हुई एक मुस्लिम खातून हो।”

मुझे ऐसा लग रहा था जैसे कही बहुत दूर से आकर ये शब्द मेरे मस्तिष्क में

केचुओं की तरह रेग रहे हो। मुनता हूँ, केंचुएं बहुत बढ़िया किस्म की खाद बनात है। मैं तो, नहीं शायद मैं भूली, मैं शायद तब खाद बनकर ही रह गई थी—बढ़िया किस्म का खाद, जिसमें बदबू नहीं उठती। काश, मुझमें से बदबू उठ सकती।

प्यारे दोस्त! एक दिन मचमुच मैंने अपने-आपको एक छोटे-से खुशहाल देहात में पाया। वहा म्हरी-पुरुष सब मिलकर खेती करते थे और फिर हीर-राजा के गीत गाते थे। कितनी मस्ती थी उस आलम में। वहां की सुहानी धूप तक हमसे लिपट-लिपट जाती थी। बचपन में मां-बाप के साथ ऐसे ही देहातों में रहते हुए मैंने न जाने कितने सतर्गे सपने देखे थे, इसलिए बहुत देर तक मैं उस बातावरण से अछूती न रह सकी। बयार की मादकता ने मैं उभारों को फिर से आकर्षक बना दिया। मैंने निश्चय किया था कि अब मैं किसी को अपने पास नहीं आने दूगी। लेकिन पास आने या न आने देने वाला कोई 'मैं' थोड़े ही होता है। वह तो एक गध होती है। नर-नारी के सबंधों की गध जो किसी एक के अंगों से फूटती है और किसी दूसरे के अंगों को खींच लेती है।

फारुखी इस स्वाभाविक आकर्षण को न जाने क्या-क्या नाम दिया करता था, पर मुजफ्फर था कि भाषा से निर्भाव अपरिचित था। उसकी आखों की शरारत, उसके होठों की मुसकान और बाहों की जकड़न इतनी मासल थी कि लोथ मे भी चाह पैदा कर देती थी।

इसका जो परिणाम हो सकता था वही हुआ—नारी फिर मां बनी। इस बार दो जुड़वा बच्चों की मा। नियति का व्यग्र कितना क्रूर होता है। और मेरे पांच बेटे थे अब। कुती के भी पांच बेटे माने गए हैं। छठे को, जो उसका पहला था, उसने स्वर्यं त्याग दिया था। मेरा भी छठा बेटा है, मेरे प्रेम का प्रतीक पर वही मुझसे छीन लिया गया।

आपको नाम तो बताए नहीं उनके। आवश्यक नहीं है पर बिना नाम यहां कुछ नहीं चलता तो, मान लीजिए, तब उनके नाम थे—अम्बर, अशरफ, असगर, अहमद और अली।

आप पूछेंगे, 'छठे बेटे का नाम क्यों नहीं बताया।' जब वह मेरा रहा ही नहीं तब नाम लेकर क्या करूँगी? फिर भी उसका नाम है—आशिम।

तो मेरे दोस्त! मेरी जिदगी का चक्र इस तरह तेजी से धूम रहा था। उन गांव वालों की दृष्टि मेरे पांच बेटों की मा थी, बेहद खुशकिस्मत और सुखी भी। मुजफ्फर को मेरे निगोड़े रूप का जादू पागल बनाए हुए था। लेकिन यह कोई नहीं जानता था कि इस सुख और सौदर्य को भोगने वाली मात्र एक जीवित लाश, संम्कार और सभ्यता के आवरण से मुक्त एक कठपुतली है, जो न जाने कौन-सी नियति के इशारे पर यह सब कुछ करने को विवश थी।

इसके पीछे नर-नारी के शाश्वत संबंध थे या वे खतरनाक परिस्थितियां थीं जिनमें मैं अपने बाबजूद उलझती जा रही थी। और स्वामित्व जताने वाले हर पुरुष को मैं प्यार करने का नाटक करती थी। लेकिन नाटक करने की भी एक सीमा होती है। मैं जैमे

टूट गई और मैंने तय कर लिया कि इस डर्वर भूमि पर अपना जीवन गुजार दूँगी। मैं मुजफ्फर की बीबी हूँ, उसी की रहूँगी। पांडु की तरह वह मेरे पांच बच्चों का बाप कहलाएगा। और फिर मैं एक दिन बूढ़ी होकर अपने किसान बेटों के हाथों यहाँ की जमीन में दफना दी जाऊँगी। न सही मत्र-पाठ, कुरान शरीफ की आयते मेरी मिट्टी को मिट्टी के सुपुर्द कर देगी।

लेकिन कुरुक्षेत्र का युद्ध अभी पूरा नहीं हुआ था। उस दिन मुजफ्फर घर लौटा तो बेहद परेशान था। उसने कहा, “तुम यहाँ नहीं ठहर सकोगी। तुम्हे और दूर पहाड़ों के उस पार जाना होगा। तुम्हारे देश वाले तुम जैसी औरतों को ढूँढते फिर रहे हैं और उन्हें शक है कि एक औरत इस गांव में भी है।”

कितनी बार हुआ था यह। मैं स्तब्ध तो न हो सकी, पथराई आखों से देखती रह गई उसे, बस। उसने मुझे बांहों में समेट लिया। बोला, “तुम परेशान भत होओ। सब इतजाम कर दिया है मैंने। मेरा दोस्त है वहाँ।”

“तुम नहीं चलोगे?”

“अभी तो नहीं, पर आऊंगा, जल्दी ही आऊंगा।”

हर बार नियति ने मुझसे छल किया। हर बार मुझे लगा कि मैंने स्वयं ही स्वयं की हत्या की है। हर बार मैं अपने से पूछती, ‘यह तू ही है क्या ?’

उस रात चुपचाप, घुप्प अंधेरे में, बिना किसी-से मिले और पांच बच्चों के साथ मैं एक अनजान प्रदेश की ओर रवाना हुई। अहमद और अली तब एक-एक वर्ष के थे, असगर, अशरफ और अनबर क्रमशः दो तीन और चार वर्ष के हो रहे थे। कई दिन की यात्रा के बाद हम एक छोटे-से पहाड़ी गाव में पहुँचे। और आप विश्वास नहीं करेगे, पूरे तीन साल तक यहा से वहाँ, वहाँ से कहाँ-कहा मैं भटकती रही। तीन-चार महीने से अधिक कभी एक जगह न रह सकी। साल-भर मुजफ्फर से संबंध बना रहा। उसके बाद वह भी नहीं आया। यह सब यो-ही हुआ या जानबूझकर पैदा किए किसी भ्रम के कारण। मैं बेसहारा, बेपनाह, भीख पागने को विवश हो गई। आप पूछेंगे कि क्या मेरे रूप ने अब और किसी को आकर्षित नहीं किया? किया, लेकिन अब मुझमें न जाने कैसी अंध-चेतना जाग उठी थी। न समझ में आने वाला एक विदोह अवसर आने से पूर्व ही मुझे वहा से निकल भागने को विवश कर देता। अपने को बचाने के लिए मैंने अपने-आपको और अपने बच्चों को बार-बार खतरे में डाला..

क्या करेंगे आप उस लंबी यातना की दास्तान सुनकर, इतना ही जान लीजिए कि मुजफ्फर का घर छोड़ने के तीन वर्ष बाद मैंने अपने को पेशावर में पाया। तब मैं पास रह गया था रूप, न यौवन, लेकिन चलते रहने की एक अदम्य लालसा अभी शेष थी। जीने की लालसा जो हर खतरे को मोहक बना देती है या कहूँ कि हमेशा खतरनाक परिस्थितियों में जूँझते-जूँझते मेरी ताकत निरतर बढ़ती जा रही थी। जीवित रहना भी कितना विलक्षण है।

मेरे दोस्त।

यहीं वह अघटित घट गया जिसको न घटने देने के लिए मैं अब तक भागती रही थी। अनवर अब सात वर्ष का हो रहा था। दुख और कष्टों के इस पारावार ने उसमें अद्भुत सबेदना पैदा कर दी थी। वह अनचाहे, जालिम बाप का बेटा था, लेकिन वही मेरे पावों के कटि निकालता था। भीख माँ लाता, मौका पड़ने पर छोटे-मोटे काम भी कर लेता। कहा से आई उसमें यह चेतना? कैसा है यह प्यार और नफरत का आल-जाल—अनबूझ-अनचाहा लेकिन कुछ भी हो, वह मेरा हमसफर बन गया। एक ऐसे सफर का साथी जिसके अगले पडाव का हमें कुछ पता नहीं होता था।

मेरे दोस्त, जिस डर से मुझे पहाड़ों में छिपाया था, पीछा करते-करते वही डर यहां आ पहुंचा। हिंदुस्तान के लोग इस इलाके में विशेष रूप से सक्रिय थे। नियति भी कैसे-कैसे खेल-खेलती है। उसने एक दिन अनवर को उन्हीं के पास भेज दिया। वह जानता था कि मैं कभी हिंदू थी। लेकिन उससे बाते करते-करते उन्हें जब पता चला कि हम कई वर्ष से भागते फिर रहे हैं तो उन्हें शक हो गया। वहीं शक उन्हें मेरे पास खींच लाया। आश्चर्य! उनके पास मेरा चिन्ह था और पूरा परिचय भी। मेरी आंखों ने मुझे यहा भी धोखा दिया। उन्होंने 'सुरैया' के वेश में 'प्रतिमा' को पहचान लिया। मेरे हाथों से एक और जिदगी रेत की तरह फिसल गई। एक बार मैंने फिर मरना चाहा। चाहा कि सब बच्चों को लेकर नदी में कूद जाऊ पर हुआ यह कि मैं क्रोध से भभक उठी और मैंने अनवर को बुरी तरह पीट दिया। वह बिलबिलाता रहा और सुबकियों के बीच कहता रहा, “‘अम्मी! मैंने उन्हें कुछ नहीं बताया था। कुछ भी नहीं। सच अम्मी।’”

उस रात उस मासूम बच्चे को छाती में समेटकर मैं कितना रोई, कोई ले सकेगा थाह मेरे उन जलते आंसुओं की।

प्यारे दोस्त! प्रतिमा से सुरैया तक की यह यात्रा नारी होने की त्रासदी की यात्रा है। नर-नारी के संबंधों में नारी के हिस्से में त्रासदी ही तो आती है, जो बार-बार उसे उसकी अपनी धुरी से उखाड़ फेंकती है।

कहानी का अतिम पर्व आ पहुंचा है। एक दिन पाया कि मैं इस नारी-निकेतन में हू—अधमृत, अधेड़, चिथड़ों में लिपटो एक लाश। कितने जीवन जी चुकी थी मै! शायद अब यह अंत था, ऐसा अंत जो ‘अनंत’ है। मै फिर प्रतिमा बन गई थी। पत्थर की प्रतिमा, जिसका एक-एक अग तोड़ दिया गया है। जिसकी आत्मा मे हजार छेद है, जो इस देश की भाषा में पापिष्ठा, दुराचारिणी और कलौंकिनी है। और उसका सबूत है ये मासूम बच्चे जिनको मैंने अपने शरीर के टुकड़ों में बांट-बांटकर जन्मा है। और जिन्हें आश्रम में फिर नए नाम दिए गए हैं। वे अब अनवर, अशरफ, असगर, अहमद और अली नहीं हैं, अनिल, अशोक, असित, अमित, और अजित हैं। शायद इसीलिए अब और अधिक तिरस्कृत, अपमानित, लाञ्छित तथा घृणा के पात्र बन गए हैं।

संचालिका ने एक दिन मुझसे कहा, “तुम्हारे ससुराल वालों को सूचना दे दी गई है, लेकिन कोई आएगा, इसकी संभावना दिखाई नहीं देती। तुम्हारी खोज उनके कहने पर भी, बल्कि तुम्हारे पिता के कहने पर की है हमने।”

मैंने तड़पकर जबाब दिया, “कौन आता है, कौन नहीं, इसकी मुझे चिता नहीं है, लेकिन यह जानने का अधिकार मुझे है कि आखिर हमें इधर क्यों लाया गया? क्या आवश्यकता थी हमें अपमानित करने की?”

संचालिका मुस्कराई, बोली, “देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न था यह।”

आप सर्जक हैं। क्या मैं आपसे पूछ सकती हूं कि मनुष्य का अपमान करके कोई अपनी प्रतिष्ठा कैसे रख सकता है? उधर मैं जैसी भी थी, घृणा की पात्र नहीं थी। मा को भगवान के समकक्ष मानने वालों के देश में नारी का अपमान क्या प्रमाणित करता है, क्या यह भी बताना होगा आपको?

संचालिका ने ठीक कहा था, कोई नहीं आया मेरी ससुराल से। आए बस मेरे पिता, लेकिन मिलने का साहस वे भी नहीं बटोर सके। मेरी कहानी सुन चुके थे। अपनी पापिष्ठा बेटी से आखें कैसे मिलाने! संचालिका ने बताया कि वे दूर से ही देखते रहे, रोते रहे, फिर वहीं से लौट गए। बाद मे उन्होंने एक हजार रुपया मेरे लिए भेजा था कि मैं किसी गाव में जाकर रह सकूँ और अपने पैरों पर खड़ी हो सकूँ। आवश्यकता पड़ने पर और भी भेजते रहने का आश्वासन दिया था। लेकिन वह नहीं चाहते थे कि मेरी मा मेरे बारे में कुछ जाने।

सुनकर मैं हँस पड़ी, अब मुझे रोना नहीं आता था। पंडित लोग इसे योग की स्थिति बताते हैं। सिद्धावस्था यही नहीं है क्या शास्त्र तो, मैंने सुना था, यह भी कहते हैं कि आदमी कुछ नहीं करता। प्रकृति उसे अपने काम में जोत देती है। यानी हम यत्र हैं किसी निश्चय करने वाली शक्ति के। तब वे लोग मुझसे नफरत क्यों करते हैं? क्यों मेरे प्यारे दोस्त..?

लेकिन अभी रहने दीजिए इस प्रश्नाकुलता को, अभी तो कहानी का चरम उत्कर्ष आना शेष है। और शेष है मुझे अभी और कटुता का विष पीना। हर दूसरे-तीसरे दिन मैं अनुभव करती थी कि कोई चुपचाप मुझे और मेरे बच्चों को देख रहा है। चुपचाप संचालिका से बाते कर रहा है। एक दिन संचालिका ने मुझसे पूछा, “तुम यहां से कहीं जाना चाहती हो?”

मैंने एक क्षण उनकी ओर देखा, फिर यत्रवत् बोली, “हा।”

उन्होंने कहा, “मैंने तुम्हारे लिए दूर एक पहाड़ी गाव में रहने का प्रबंध किया है। वहां के स्कूल में तुम पढ़ा सकोगी। गृहशिल्प में तुम निपुण हो। गांव की महिलाओं को प्रशिक्षित कर सकती हो। लेकिन तुम अपने इन बच्चों को कैसे पालोगी? क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इनमें से कुछ को भले घरों में गोद दे दिया जाए..?”

उस दिन पहली बार मेरे भीतर सोई नागिन जाग उठी। आवेग इतना प्रबल था

कि शब्द मुंह से नहीं निकल रहे थे। चाहा कि धब्का देकर उन्हें दीवार मे दे मारू  
सचालिका, जो सचमुच मेरे प्रति अतिरिक्त सदय हो उठी थी, मेरा यह रूप  
देखकर घबरा गई, तुरत बोली, “नहीं नहीं, यह जरूरी नहीं है। जल्दी भी नहीं है। मेरे  
मन मे एक विचार उठा था, कह दिया। सोच, देखना तुम।”

और वे तुरंत मेरे सामने से हट गई। दो क्षण बाद आवेग कुछ शांत हुआ तो मैं  
स्वयं अपने पर चकित थी और किञ्चित लज्जित भी। मैं जानती थी, मैं जीवन-भर किसी  
पर आश्रित नहीं रह सकती। कुछ न कुछ प्रबंध मुझे करना ही होगा। गांव जाने के लिए  
इसलिए तैयार थी कि मैं अपने तथाकथित परिजनों से अब और अपमानित नहीं होना  
चाहती थी। पिताजी का दान लेना स्वयं अपना अपमान करना था। दुर्बलता के किन्हीं  
क्षणों में चाहा था कि उन्हें पत्र लिखू। याद करू लाड़-प्यार के उन दुर्लभ क्षणों की।  
फिर सोचा कि जो संस्कारों की जड़ता को तोड़कर मेरी बेदना में सहभागी नहीं हो  
सकता, उसको पीड़ा पहुंचाना आत्मपीड़न ही नहीं होगा क्या? गांव चली जाऊगी और  
अपनी संतान को पालूंगी मैं स्वयं।

प्यारे दोस्त! मैंने आपको बताया न, जो पाप और पीड़ा की राह आया और  
जिसकी हत्या करनी चाही मैंने, वही अनवर यानी अनिल मुझे सबसे अधिक प्यार करता  
है। मेरी सारी घृणा पी गया है वह नीलकंठ महादेव की तरह। ऐसे बर्ताव करता है जैसे  
वही मेरा गार्जियन है। पूछता है कभी-कभी, “अम्मी! मैं अब अनिल कैसे हो गया?  
अनवर और अनिल मे क्या फर्क है? अम्मी! ये सब हमें ऐसे क्यों देखते हैं?”

आयु के आठवें वर्ष मे ही विधाता ने कितना बोझ रख दिया इसके कंधों पर।  
इसके विपरीत, नूर का बेटा अशरफ जो अब अशोक है, बेहद उद्दंड है। हर समय हर  
किसी से फौजदारी करने पर तुला रहता है। लैकिन पढ़ने में होशियार है। असगर उर्फ  
आसित सचमुच शायर का बेटा है। छह वर्ष का हुआ नहीं अभी, पर न जाने कहा खोया  
रहता है। कभी-कभी उनींदी आंखों से मुझे देखता है कि मेरे दिल में फारुखी की याद  
कसक उठती है!

कितनी यादें, कितने मंजर, किसको भूलूं, किसको याद करूं। मुजफ्फर शायद  
मुझे अब भी ढूँढ़ता फिरता होगा। कहीं अपने बच्चों का दावा करने न आ पहुंचे वह।  
उसके दोनों बच्चे अहमद और अली जो अब अमित और अजित के नाम से पुकारे जाते  
हैं, अपने पिता के बारे में कुछ नहीं जानते। कभी-कभी पूछते हैं, सभी पूछते रहे हैं  
और मैं झूठ बोलती रही हूं। किसी को कभी सच नहीं बताया। सच कुछ होता है  
क्या? किसी के सच को नापने का यंत्र अभी कोई वैज्ञानिक नहीं बना पाया है।

स्कूल के रजिस्टर मे मा का नाम कभी नहीं लिखा जा सकता। बाप अनिल,  
अशोक, असित, अमित और अजित का कोई है नहीं। हैं तो अशरफ, असगर, अहमद  
और अली के हैं। अनवर के बाप को तो कोई जान ही नहीं सकेगा। कैसा अच्छा था  
उपनिषद् काल का भारत। उस काल के परमतत्त्ववेत्ता सत्यकाम की दासी मां जाबाला

मैं यह कहने का साहस था, “मैं नहीं जानती तुम्हारे पिता कौन थे। तुम मेरे बेटे हो। मेरा ही नाम लिखा दो गुरु के रजिस्टर मे।

और तब सत्यकाम का नाम हुआ-सत्यकाम जाबाल। क्या आज मेरे बेटों को यह अधिकार मिल सकता हे? क्या वे गर्व से सिर उठाकर कह सकेंगे कभी, ‘हमें पता नहीं पता, हमारा पिता कौन था। हम माँ को जानते हैं और उनका नाम है प्रतिमा। वही लिख लीजिए रजिस्टर मे।’

मातृत्व को नारी का चरम सौंदर्य माना है। वह मुझे मुक्तकंठ से मिला है। किस ओर से मिला, यह प्रश्न गौण है। इसे एक और दृष्टि से भी देखिए, आर्य परंपरा मे मा का पद सर्वोच्च है इसीलिए तो जहर भी सबसे अधिक पीना पड़ता है, नारी होने के अपमान का जहर.. मुझे कहने दो, मेरे दोस्त! जिसे सबसे अधिक अपमानित करना होता है उसे ही सबसे सुदर विशेषण दिए जाते हैं। बलि के बकरे को हृष्ट-पुष्ट न करेगे तो कौन खरीदेगा उसे? आपने नर-नारी के सबधों के सौंदर्य मे इस तथ्य की चर्चा नहीं की है। पुरुष है न अंततः.

आप सोचेंगे, मैं इतनी क्रूर क्यों हो उठी हूँ!

उस दिन तभी वर्षा होकर चुकी थी। बातावरण एक सोंधी-सोधी गंध से महक रहा था। मैं अपने कमरे की खिड़की का लोभ संवरण न कर सकी। यह वही खिड़की है जिसकी सलाखों पर अपना भीगा चेहरा टिकाकर मैंने आपको देखा था।

उस दिन देखा एक किशोर होते बालक को—स्वस्थ, सुंदर, स्कूल की शुभ्र-श्वेत पोशाक, पीठ पर बस्ता, धीरे-धीरे चौकन्ना-सा वह आश्रम के मुख्य द्वार तक आया और वहाँ से उचक-उचककर मेरी खिड़की की ओर देखने लगा। मैं चौकी, मेरा कौतूहल जाग आया। मैंने सलाखों पर चेहरा टिकाकर उसे गौर से देखा। वह भी तब टकटकी बांधे इधर ही देख रहा था। हमारी दृष्टि मिली, उसने जैसे प्रेत देखा हो, तेजी से मुड़ा और ताबड़तोड़ भागने लगा। एक बार भी मुड़कर नहीं देखा उसने।

हतप्रभ-स्तब्ध एक क्षण तो समझ न पाई, फिर तो एक ठंडी सिहरन मेरे रेशे-रेशे मे उत्तरती चली गई—कहीं.. कहीं..।

“नहीं.. नहीं..” मैं तेजी मुड़ी। अनिल सामने आ गया। मेरी ओर देखा उसने, चेहरे पर प्रश्न उभरा, “क्या है अम्मी?”

“कुछ नहीं। कुछ नहीं, बेटे।” मैंने अपने को सहेज लिया, पर भीतर..

“एक बात बताऊ, अम्मी?”

“क्या बात है?” मैं फिर सिहरी।

“मैं बताना भूल गया था,” अपराधी की तरह उसने कहा, “कई दिन से एक लड़का यहाँ आता है।”

यहाँ तो बहुत से लोग आते हैं लड़के भी होते हैं उनमें तुम किस लड़के की जांच करते हो?

अनिल कहता रहा, “वह बहुत अच्छा है। उसने मुझे चाकलेट दी थी। उसने पूछा था, ‘वह कोई प्रतिभा है?’

“मैंने एकदम कहा, ‘हा, अब मेरी मम्मी का यही नाम है।’

“उसने पूछा, ‘अब यही नाम है। पहले नहीं था?’

“मैंने कहा, ‘पहले तो उनका नाम सुरैया बेगम था। जैसे मेरा नाम अनवर था। अब मेरे अनिल हूँ।’

“वह बोला, ‘तब वह कोई और है, लेकिन क्या तुम मुझे उन्हे दिखा सकते हो?’

“मैंने कहा, ‘हा-हा, उम खिड़की बाले कमरे में रहते हैं हम। आओ मेरे साथ।’

“‘नहीं-नहीं, फिर आऊंगा।’ कहता हुआ वह भाग गया था। वही आज फिर आया”

न जाने वह कोन-सी ‘मैं’ थी जो यह सब सुन रही थी और न जाने वह भी कौन-सी ‘मैं’ थी, जिसने पूछा था, “उसका नाम जानते हो?”

“हा-हा, आशिम है उसका नाम।”

दोनों हाथों से दीवार न थाम लेती तो निश्चय ही बेहोश हो गई होती। पसीने से तर हो आई थी। अनिल ने सहज भाव से पूछा, “तुम उसे जानती हो, अम्मी?”

मैंने तीव्रता के प्रतिवाद किया माने चीख डंठी हूँ, “नहीं, नहीं, मैं किसी को नहीं जानती यहा।”

अनिल ने अब मेरी ओर देखा। मेरे श्वेत हो आए चेहरे को देखकर घबरा गया वह। बोला, “तुम्हारी तबियत खराब है, अम्मी, तुम लेट जाओ।”

बेचारा अनिल। क्या बताऊँ उसे। अपने को बटोरकर इतना ही कहा, “नहीं बेटे। तबियत मेरी ठीक है, लेकिन तुम अब उससे बात मत करना। हमें अजनबियों से दोस्ती नहीं..”

मैं अपना वाक्य पूरा ही नहीं कर पाई। उसने दीर्घ निश्वास खींचकर कहा, “अच्छा।”

उसका यह ‘अच्छा’ शब्द सुनकर मुझे आपकी याद आ गई। आपने भी तो उसी दिन इसी तरह कहा था, ‘अच्छा’ पर कहाँ आप, कहाँ यह बच्चा। मैं पागल हो उठी उसके मुह से यह शब्द सुनकर, चाहा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटती रहूँ, घोटती रहूँ। लेकिन हुआ यह कि मैंने खींचकर उसे अपनी छाती में भर लिया और अपने को रोकने में असमर्थ फूट-फूटकर रोने लगी।

जानते हो, दो क्षण मुझे क्या लगा था। लगा था, वह अनिल नहीं आशिम है और मैं ताबड़तोड़ उसका मुह चूम रही हूँ।

कई दिन तक मैं सोखचों पर मुँह टिकाए उसी दिशा में टकटकी बांधे देखती रही। उस बदूरी की तरह उसका भी रुकावा रुकावा रुकावा रुकावा।

भटकते-भटकते किसी शानदार बंगले में पहुच गई हू। कैसी ऐयाशी कैसी प्रचुरता। पर यह चीख कैसी है, किसी बच्चे की मर्मातिक चीख भागी-भागी मैं अदर जाती हू। देखती हू कि एक क्रूर युवक एक आठ-नो वर्ष के बच्चे को बेतों से पीट रह है, “कबड्डि, अगर अब कभी उधर पैर भी रखा तो जर्मान मे गाड़ दूगा।”

बच्चा चीखता है, “नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊगा। मुझे मारो मत मुझे मारो मत।”

पहचान लेती हू, वह क्रूर युवक मेरा देवर है। उसके पीछे खड़ी है मेरी सास। मेरी सास तड़पकर आगे बढ़ती हूं और युवक के हाथ से बेत छीन लेती हूं “उस मासूम को क्यों मारते हो? अपराधी मैं हू, मुझे मारो!”

वे सकपकाकर मेरी ओर देखते हैं, पहचान लेते हैं। दूसरे ही क्षण आशिम भगता हुआ मुझसे आ चिपकता है, और मेरी बाहो मे बेहोश हो जाता है..

मेरी सास चीख रही है, “निर्लज्ज, कलंकिनी, तुझसे मरा नहीं गया। तेरी लाश पाकर हम कितने गौरवान्वित होते।”

तभी नींद खुल जाती है। अधेरे मे बार-बार आँखे फाड़ देखती रहती हू। सोचती रहती हूं ‘क्यों? क्यों आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही ‘मै’ से अजनबी हो जाता है ’ जो नितात मेरा अपना है, जो प्यार का प्रतिरूप है, उसी-से वचित हूं मैं। कागण कुछ भी रहा हो, कुती कर्ण के पास जा सकी थी, पर मैं.

उसी दिन सचालिका के पास गई। मैं बोली, “आप मुझे दूर किसी पहाड़ी गाव मे भेज रही है न। मैं तैयार हू आज ही जाने को। पर मेरे बच्चों को मुझसे अलग मत कीजिए। मैं उनका अपमान नहीं होने दूंगी।”

मेरे दोस्त! मैं अगले हफ्ते जा रही हू एक और जीवन जीने के लिए। न जाने क्यों आपको देखने की चाह उभर आई है मन मे। क्यों लगने लगे हैं आप अपने? इसी अपनेपन के कारण ही आपको दोस्त कहकर सबोधित किया है मैंने। मन दोस्त के सामने ही खोला जा सकता है। कैसा है यह अनोखा रिश्ता .सपनों से जुड़ा और आख खुली तो हाथ लगा एक विराट् शून्य फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अंदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और संत्रास के दौर से मैं गुजरी हू उसने मुझे यही संपदा तो बख्शी है। यह मेरे अदर की गहराइयो मे समा गई है। इसे भौतिक नेत्रों से नहीं देखा जा सकता।

अच्छा। बाहर वर्षा होने लगी है, होनी चाहिए। चाहिए न ठूँठ में नई कोपले फोड़ने के लिए

— आपकी प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा

अनिल कहता रहा, “वह बहुत अच्छा है। उसने मुझे चाकलेट दी थी। उसने पूछा था, ‘वहाँ कोई प्रतिभा है?’

“मैंने एकदम कहा, ‘हाँ, अब मेरी मम्मी का यही नाम है।’

“उसने पूछा, ‘अब यही नाम है। पहले नहीं था?’

“मैंने कहा, ‘पहले तो उनका नाम सुरेया बेगम था। जैसे मेरा नाम अनबर था। अब मेरे अनिल हूँ।’

“वह बोला, ‘तब वह कोई और है, लेकिन क्या तुम मुझे उन्हें दिखा सकते हो?’

“मैंने कहा, ‘हा-हा, उस खिड़की वाले कमरे मेरे रहते हैं हम। आओ मेरे साथ।’

“‘नहीं-नहीं, फिर आऊंगा।’ कहता हुआ वह भाग गया था। वही आज फिर आया।”

न जाने वह कौन-सी ‘मै’ थी जो यह सब सुन रही थी और न जाने वह भी कौन-सी ‘मै’ थी, जिसने पूछा था, “उसका नाम जानते हो?”

“हा-हा, आशिम है उसका नाम।”

दोनों हाथों से दीवार न थाम लेती तो निश्चय ही बेहोश हो गई होती। पसीने से तर हो आई थी। अनिल ने सहज भाव से पूछा, “तुम उसे जानती हो, अम्मी?”

मैंने तीव्रता के प्रतिवाद किया मानो चीख उठी हूँ, “नहीं, नहीं, मैं किसी को नहीं जानती यहाँ।”

अनिल ने अब मेरी ओर देखा। मेरे श्वेत हो आए चेहरे को देखकर घबरा गया वह। बोला, “तुम्हारी तबियत खराब है, अम्मी, तुम लेट जाओ।”

बेचारा अनिल। क्या बताऊँ उसे। अपने को बटोरकर इतना ही कहा, “नहीं बेटे। तबियत मेरी ठीक है, लेकिन तुम अब उससे बात मत करना। हमें अजनबियों से दोस्ती नहीं ..”

मैं अपना वाक्य पूरा ही नहीं कर पाई। उसने दीर्घ निश्वास खींचकर कहा, “अच्छा।”

उसका यह ‘अच्छा’ शब्द सुनकर मुझे आपकी याद आ गई। आपने भी तो उसी दिन इसी तरह कहा था, ‘अच्छा’ पर कहाँ आप, कहाँ यह बच्चा। मैं यागल हो उठी उसके मुह से यह शब्द सुनकर, चाहा कि दोनों हाथों से उसका गला घोटती रहूँ, घोटती रहूँ लेकिन हुआ यह कि मैंने खींचकर उसे अपनी छाती में भर लिया और अपने को रोकने मेरे असमर्थ फूट-फूटकर रोने लगी।

जानते हो, दो क्षण मुझे क्या लगा था। लगा था, वह अनिल नहीं आशिम है और मैं ताबड़तोड़ उसका मुँह चूम रही हूँ...

कई दिन तक मैं सीखचों पर मुँह टिकाए उसी दिशा में टकटकी जाधे देखती रही पर तब पिछे उसी आगा पक गया।

. भटकते-भटकते किसी शानदार बंगले मे पहुच गई हू। कैसी ऐयाशी कैसी प्रचुरता। पर यह चीख कैसी है, किसी बच्चे की मर्मातिक चीख भागी-भागी मैं अदर जाती हूं। देखती है कि एक क्रूर युवक एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे को बेतों से पीट रह है, “कबख्त, अगर अब कभी उधर पैर भी रखा तो जमीन मे गाड़ दूंगा।”

बच्चा चीखता है, “नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊंगा। मुझे मारो मत। मुझे मारो मत।”

पहचान लेती हूं, वह क्रूर युवक मेरा देवर है। उसके पीछे खड़ी है मेरी सास। मैं तड़पकर आगे बढ़ती हूं और युवक के हाथ से बेंत छीन लेती हूं “उस मासूम को क्यो मारते हो? अपराधी मैं हू मुझे मारो।”

वे सकपकाकर मेरी ओर देखते हैं, पहचान लेते हैं। दूसरे ही क्षण आश्चिम भागता हुआ मुझसे आ चिपकता है, और मेरी बांहों मे बेहोश हो जाता है।

मेरी सास चीख रही है, “निर्जन, कलंकिनी, तुझसे मरा नहीं गया! तेरी लाश पाकर हम कितने गौरवान्वित होते।”

तभी नीद खुल जाती है। अधेरे में बार-बार आंखे फाड़े देखती रहती हू। सोचती रहती हूं ‘क्यो? क्यों आदमी अपने से ही छल करता है, अपने ही ‘मै’ से अजनबी हो जाता है..’ जो नितांत मेरा अपना है, जो प्यार का प्रतिरूप है, उसी-से बचित हूं मैं। कारण कुछ भी रहा हो, कुती कर्ण के पास जा सकी थी, पर मैं

उसी दिन संचालिका के पास गई। मैं बोली, “आप मुझे दूर किसी यहाड़ी गाव मे भेज रही है न। मैं तैयार हू आज ही जाने को। पर मेरे बच्चो को मुझसे अलग मत कीजिए। मैं उनका अपमान नहीं होने दूगी।”

मेरे दोस्त। मैं अगले हफ्ते जा रही हू एक और जीवन जीने के लिए। न जाने क्यों आपको देखने की चाह उभर आई है मन मे। क्यो लगने लगे हैं आप अपने? इसी अपनेपन के कारण ही आपको दोस्त कहकर संबोधित किया है मैंने। मन दोस्त के सामने ही खोला जा सकता है। कैसा है यह अनोखा रिश्ता...सपनों से जुड़ा और आंख खुली तो हाथ लगा एक विराट् शून्य फिर भी भरोसा मुझे है और वह मेरे अदर से आया है बिना किसी के दखल के। जिस घोर यंत्रणा और सत्रास के दौर से मैं गुजरी हू उसने मुझे यही संपदा तो बछरी है। यह मेरे अंदर की गहराइयो में समा गई है। इसे भोतिक नेत्रो से नहीं देखा जा सकता।

अच्छा। बाहर वर्षा होने लगी है, होनी चाहिए। चाहिए न ठूठ में नई कोपले फोड़ने के लिए

— आपकी प्रतिमा उर्फ आयशा उर्फ सुरैया उर्फ प्रतिमा

## मृत्युंजय

उस दिन कैप मे जाने पर अचानक एक पुराने मित्र से भेट हो गई। पास जाकर देखता हूँ—उसका चेहरा रुखा और झुर्रियों से भरा हुआ है। शरीर पर के कपडे न केवल मैले हैं बल्कि अनुपयुक्त भी हैं। पैर सूजे हुए हैं और क्षत-विक्षत भी। पास ही उसका बेटा बैठा है। वह भी उसी की तरह घायल और श्रीहीन है। उसकी कातर दृष्टि दिल मे कसक-कसक उठती है।

मुझे एकाएक देखकर मेरा मित्र एक क्षण तो स्तब्ध हो रहा फिर मुस्कराया,  
“तुम..”

मैने द्रवित होकर कहा, “तुम्हारी यह दशा . ?”

उसने अपने को संयत कर लिया था। वह हँस पड़ा, बोला, “मुझे छाई दो, मेरे दोस्त, मै जिंदा हूँ।”

बहाँ तब बड़ी भीड़ थी और शोर मच रहा था—क्रोध, खीज और रुदन से भरा शोर। उसी के बीच अनेक युवक और युवनिया तत्परता से सैनिक की भाँति व्यवस्था मे लगे थे। उन्हीं को घेरकर कभी कोई परिवार तेजी से बोलने लगता था, कभी कोई व्यक्ति अपने प्रियजनो के बारे में जानने को व्याकुल प्रश्न पर प्रश्न करके उन्हें परेशान कर देता था। लेकिन दूसरी ओर कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो सूजे हुए पैर और फटी हुई आँखें लिए इधर-उधर कोनो मे बिखरे पडे थे। वे न बोलते थे, न उनकी आँखो में आसू थे। वे बस, सिर नीचा किए धरती से बातें करते या फिर सिर उठाकर शून्य मे ताक लेते थे। वह शून्य सूरज की धूप और चीलों से भरा था। कभी-कभी हवाई जहाज की घर-घर पक्षी-दल मे हलचल पैदा कर देती, तब कैप के रोते-हँसते बच्चे चुप होकर ऊपर देखने लगते।

मैं मान लूँगा कि मे उलझन मे पड़ गया था। क्या कहूँ? कैसे कहूँ? हम दोनो बहुत दिन तक एक ही शहर मे एक साथ रहे थे। एक ही महकमे मे काम करते थे। इसी लिए हमारी मित्रता साधारण जान-पहचान से काफी आगे बढ़ गई थी। वह सुदूर पश्चिम का रहने वाला था और उसका शरीर इतना सुगठित था कि घर में स्वास्थ्य की चर्चा करते समय हम उसको आदर्श मानते थे। वही मित्र आज बुढ़ापे को लजा रहा था। मैने साहस बटोरा, पूछा, “तुम थे कहाँ?”

“गांव मे।”

“यहा कब आए?”

“कल रात”

“चैदल?”

“हाँ।”

मैं फिर मौन हो गया। एक अव्यक्त तरलता मुझे बेनैन कर रही थी और मैं बोलने को शब्द नहीं खोज पा रहा था। किसी तरह कहा, “यहा ठहरे हो?”

“अभी तो यही हूँ।”

“घर चलो।”

वह कृतज्ञता से मुसकराया। बोला, “यह क्या घर नहीं है?”

मैंने कहना चाहा पर कह सकूँ इससे पूर्व ही कोई चीत्कार कर उठा। तब जो अब तक नहीं देख पाया था, वह देखा। उसके पीछे एक कोने में एक वृद्ध पुरुष पैर सिकोड़े लेटे थे। उनके सूजे हुए पंजे ऊपर तक फटे हुए थे और उनमें रक्त चमक आया था। उनकी आंखें बिलकुल अदर धंस गई थीं और कोए सूज रहे थे। वे कभी-कभी तेजी से ‘आह’ करते और फिर एक हाथ से दिल को सहलाने लगते। कभी-कभी दोनों हाथों से मुंह ढककर चीत्कार कर उठते। उनका यही चीत्कार सुनकर मैं चौंक पड़ा था। मैंने अब अचरज से उन्हें देखा, वे मेरे मित्र के पिता थे। तब एक क्षण मेरे असख्य चित्र मेरे नेत्रों में उभरते चले गए। वे उस सुखी परिवार के नेता थे जिसमें शक्तिशाली पुत्र और लावण्यमयी मुत्रियाँ थीं, जिस परिवार की पुत्रवधुएं अपने पुत्रों की तुलना शकुतला के पुत्र ‘भरत’ से करने को आतुर रहा करती थीं। उनके शिशु सचमुच सिंह के दांत गिनने वाले भरत के समान सुंदर और दुस्साहसी थे।

मुझे होश आया तो मैं उनकी ओर बढ़ा पर तभी देखा—चीत्कार बद हो गया है और वे एक ओर लुढ़क गए हैं। मैंने शीघ्रता से मित्र से कहा, “देखो, ये सजाहीन हो रहे हैं, शायद इन्हें दौरा पड़ गया है, मैं डाक्टर को देखता हूँ। तब तक तुम इनके मुंह में पानी डालो।”

और मैं शीघ्रता से डाक्टर के कमरे की ओर मुड़ा पर तभी मित्र ने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा, “उन्हें इसी तरह पड़े रहने दो, मेरे दोस्त।”

“क्यों..?”

“इन्हीं कुछ क्षणों में उन्हे शांति मिलती है, उसे मत छीनो।”

“पर..?”

मैंने देखा—उसकी पुतलियाँ धूमीं और सजल हो उठीं, लेकिन उस ओर से असपृक्त वह पूर्वतः मुसकराया, बोला, “मेरे दोस्त। इनकी बेहोशी में ही इनका कल्याण है। इन्हे इसी तरह रहने दो।”

मेरे भीतर तूफान धुमड़ रहा था। मैंने पास आकर उससे कहा, “आखिर क्या बात है? और लोग भी तो नहीं दिखाई दे रहे।”

“तीन पीढ़िया तुम्हारे सामने हैं।” उसने उत्तर दिया—“और क्या चाहते हो?”

“पर तुम्हारी पत्नी, बहिने, बच्चे, भाई, वे क्या कहा और चले गए हैं?”

“हाँ।”

“कहाँ?”

“जहाँ एक दिन सभी को जाना होता है।”

“क्या?”

वह फिर मुस्कराया। उसका स्वर यथापूर्व दृढ़ था। वह अपनी वेदना को अपने अदर ही झेल रहा था। उसने कहा, “वे सभी भाग्यशाली थे, मुक्त हो गए।”

मैं अबूझ-सा एक बार फिर उसके पिता की ओर मुड़ा, देखा—उनके हाथ धीरे-धीरे हिल रहे हैं और वे उन्हे उठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। मैंने शीघ्रता से आगे बढ़कर धीरे से उनके हाथ उठाए और छाती पर रख दिए। जैसे भूक्तप आ गया, तीव्रता से वे चीत्कार उठे—“यह क्या हुआ आखिर यह क्या हुआ?”

अपने को सहेजने में असमर्थ मैं उनके पास बैठ गया, चाहा उनका सिर गोद में रख लू कि मित्र ने दृढ़ता से कहा, “नहीं दोस्त, इन्हे मत छेड़ो। इस भावुक संवेदना के कारण ही इनकी यह दशा हो गई है। इन्हें शक्ति चाहिए, सहानुभूति नहीं। इनके कान में जोर से कहो—आपने बहुत अच्छा किया। आप सचमुच वीर हैं। आप पर देश को गर्व हैं।”

मैं यंत्रवत झुका, बोला, “आपने बहुत अच्छा किया। आप सचमुच वीर हैं। आप पर देश को गर्व है। वह आपको कभी नहीं भूलेगा।”

जैसे किसी ने जादू कर दिया। वे कांपते हाथ उठे, आँखें खुलीं। उन्होंने मुझे दृढ़ता से पकड़ लिया, कहा, “सच! तुम सच कहते हो?”

“जी हाँ, मैं सच कहता हूँ।”

“तो मैंने जो कुछ किया, ठीक किया।” वे उठने की कोशिश कर रहे थे और साथ ही देखने की भी। सहसा उनकी दृष्टि मेरी दृष्टि से मिली, कितनी निरीह और कितनी ब्रह्म। मैंने कहा, “जी हा। आपने जो कुछ किया वह बहुत अच्छा किया। आपने देश की अमूल्य सेवा की है। आप सचमुच।”

तब तक उन्होंने मुझे पहचान लिया था। एकाएक वे हर्ष से चिल्ला उठे—“तुम ..”

उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। मुझे लगा जैसे उनका हृदय फटने वाला है। वह इतनी तीव्रता से धड़क रहा था कि मैं समझ नहीं पा रहा था कि यह दिल की धड़कन है अथवा तूफान की। उन्होंने अटक-अटककर कहा—“तुम समझते हो, मैंने ठीक किया था?”

“जी हाँ।” मैंने कहा, “आपने बहुत अच्छा किया।”

उनके जैसे प्राण लौटे

तुम बहुत अच्छे हो बहुत अच्छे

वे काषे, "घर।"

"हाँ चाचाजी, यहा तो।"

पर मैं अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि वे फिर चीत्कार कर उठे, "घर मेरे बच्चे! यह क्या हुआ, आखिर क्या हुआ?"

और वे सुबक-सुबककर रोने लगे। मैं हतबुद्धि उन्हें देखता ही रह गया। मित्र बोले, "उन्हे यों ही छोड़ दो। वे अब फिर सज्जाहीन होने वाले हैं और यही उनके लिए अच्छा है।"

मैं बरबस उठा और मित्र के पास जा बैठा। कई क्षण उन्हे देखता रहा। वे धीरे-धीरे सज्जाहीन हो रहे थे। हाथ लटक गए, आखें पथरा गई और सास रुक-रुककर आने लगी। मैंने धीरे से मित्र से पूछा, "आखिर यह सब क्या हुआ? क्या आप लोगों के साथ सेना नहीं थी? आप लोग रेल से क्यों नहीं आए? उन दिनों आप कहा थे?"

उसने मेरी ओर देखा, दो क्षण देखता रहा। फिर बिना किसी भूमिका और भावुकता के वह बोलने लगा, "मेरे दोस्त, हुआ यह.. उन दिनों हम सब पिताजी के साथ गाव चले गए थे।"

"गांव क्यो?"

"क्योंकि हमें विश्वास था कि शहर की आग गांव मे नहीं पहुंच सकती। यह विश्वास आधारहीन नहीं था। देश में जो हिंसा और धूमा का बातावरण बन गया था, उसके बावजूद गावों मे शांति थी। यद्यपि वहां पर उन लोगों का प्रबल बहुमत था, फिर भी वहां कभी सांप्रदायिक दगे नहीं भड़के। भड़क ही नहीं सकते थे। हम लोग उन्हीं के समान धरती की संतान थे। एक ही भिट्ठी से हमाग शरीर बना था। लेकिन सूझ-बूझ और समझ में वे हमारे सामने बच्चे थे। यही हमारा सबसे बड़ा सबल था। वे सदा अपनी समस्याएं लेकर हमारे पास आते थे और हमारा आदर करते थे। खानदान के वे बधन जो देश के इस भाग में हैं, उधर नहीं थे। जो थे, वे भी अब टूटते जा रहे थे। विशेषकर नई पौध मे इन बधनों का कोई मूल्य नहीं रह गया था।"

वह फिर मौन हो गया। मानो कुछ याद करना चाहता हो। दो क्षण बाद धीरे-धीरे बोला, "लेकिन धर्म उनके लिए सामाजिक वस्तु है, व्यक्तिगत नहीं। इसी कारण जब देश मे 'धर्म खतरे मे है' की पुकार गूज उठी, तब, वह प्रत्येक व्यक्ति जो उनके धर्म का नहीं था, स्वभावतः उनका दुश्मन बन गया। फिर भी इस प्रक्रिया मे काफी देर लगी। और मैं अपने गाव बालों की प्रशंसा करूँगा कि वे बहुत दिनों तक अपने-आपको उस धारा मे बहने से रोके रहे। वे जानते थे कि देश आतकबाद और हिंसा के चक्रव्यूह मे फस गया है। उसके समाचार भी वहा पहुंचते रहते थे। समाचार अपने जन्म-स्थान से जितनी दूर की यात्रा करते हैं, सत्य से उतनी ही दूर हट जाते हैं। फिर भी उन लोगों ने कहा— कहीं कुछ भी हो हम दोस्त हैं और उस दोस्ती को कायम

उभारते थे, परंतु वे फिर भी हमें दुश्मन नहीं समझ पा रहे थे। हाँ, धीरे-धीरे युवकों में कटुता पैदा होने लगी थी।"

मैंने कहा, "उनका खून गरम होता है।"

"और गरम खून में गर्मी पैदा करना बड़ा आसान होता है। गरम लोहे को किसी भी सांचे में ढाला जा सकता है। ये युवक गरम लोहे के समान थे, इसी कारण स्वार्थी नेता अतत, उन्हें अपने मार्ग पर लाने में सफल हो गए।"

मैंने धीरे से कहा, "मित्र, क्या केवल धर्म के कारण ही यह सब हुआ?"

वह मुस्कराया, "मैं जानता हूँ, तुम क्या कहना चाहते हो? हमारी अमीरी और उनकी गरीबी भी इसका कारण है।"

"और दूसरों को नीचा देखने की हमारी प्रवृत्ति भी।"

"तुम ठीक कहते हो," उसने कहा, "इसी कारण वह समुदाय जो ऊपर से शात था अंदर ही अंदर डगमगा गया। एकाधिक जब भूचाल आया तो सबकी आशा के विपरीत प्रेम और मौहार्द की दीवार भरभराकर गिर पड़ी।"

धीरे-धीरे वह इस प्रकार ओलने लगा था जैसे हम किसी सभा में बैठे हुए शास्त्रीय विषयों पर बाद-बिवाद करने लगे हों। वह दुखी था, ब्रह्म भी। पीड़ा ने उसे पूरी तरह ग्रस लिया था। इसी लिए सच्ची बात कह रहा था।

तभी वृद्ध फिर पुकार उठे, "अरे, यह क्या हुआ? मेरी बच्चियों को यह क्या हुआ?"

"बहुत अच्छा हुआ, पिताजी।" उसने दृढ़ता से कहा, "कुछ लोग कहते हैं, पंजाब ने सदा देश की पीठ पर छुरा भोंका है, सदा राष्ट्रीय आदोलन को कुचला है, पर आज आपने बता दिया है कि पंजाबी वह कुछ कर सकता है, जो कोई और करने की कल्पना तक नहीं कर सकता।"

वृद्ध के हाथ लड़खड़ाए, उन्होंने दीवार को थाम लिया और चाहा कि उठे, उठते-उठते वे फुसफसाए, "सच बेटा? क्या सच?

लेकिन यह सब क्षणिक था, वृद्ध ने फिर एक सर्द आह भरी। फिर संज्ञाहीन होने लगे और वह बच्चा जो अब तक चुपचाप बैठा हुआ था, पिता के घुटने पर सर रखकर रोने लगा। मित्र ने उसे युचकारकर कहा, "क्यों हरीश, क्या बात है, बेटा?"

हरीश ने रोते-रोते कहा, "मा।"

"अरे, अरे, तू बहादुर होकर इतना कातर होता है, बाबा को तो देख।"

हरीश ने गरदन ठार्डा। उसने कहा, "आंसू पोछ।" हरीश ने आंसू पोछ लिए। उसने कहा, "अब हँस।"

हरीश हँस पड़ा। वह भी और मैं भी, पर जैसे ही हँसी रुकी मैंने देखा वह स्वयं रोने लगा है। मैंने अचकचाकर कहा, "इसकी माँ कहाँ है?"

कई क्षण लगे उसे अपने को बटोरने में। उसने अपने को संभाल लिया। पहले

की तरह बोला—धीर गंभीर स्वर में, “बात जब बहुत बिगड़ गई और हवा के कण कण में विष फैल गया तो पिताजी अपनी ओर के कई बृद्ध पुरुषों को लेकर उनके पास पहुंचे, परंतु वहा जाकर पता लगा कि दुनिया सचमुच बदल चुकी है और उनके बचने की कोई आशा नहीं है। ये लोग घबराए, पूछा, ‘आखिर हमने क्या किया है।’

“जवाब मिला, ‘बात हमारे और तुम्हारे बीच मे नहीं रही है। अब दो कौमों के मरने-जीने का सवाल है। जो बलवान होगा, वही जिएगा।’

“मेरे पिता ने कहा, ‘लेकिन हम तो ।’

“जवाब मिला, ‘हम कुछ नहीं जानते, तुम लोगों ने बिहार मे, अमृतसर मे, लाहौर में और. ’

“आगे विवाद बेकार था। पानी सर से उतर चुका था। पिताजी लौट आए। बाहर आकर उन्होंने एक बृद्ध सज्जन को खड़े देखा। उन्होंने हमे गोद मे खिलाया था। वे दुखी स्वर मे बोले, ‘यह सच है, बात हमारे हाथ में नहीं रही। तुम चुपचाप यहां से भाग जाओ।’

“पिताजी ने उनकी आँखों मे झाकते हुए कहा, ‘भागकर कहा जा सकते हैं जगल की आग चारों ओर फैल चुकी है।’

“बृद्ध ने दोनों हाथ पिताजी के कधो पर रखकर धीरे से कहा, ‘मैं अकेला हूँ। मैं केवल तुम्हारे परिवार को अपनी गाड़ियों में ले जा सकता हूँ, लेकिन. ’

“बात काटकर पिताजी बोले, ‘सुनो, मैं कही नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा। इसी मिट्टी में हम पैदा हुए हैं, इसी में मिल जाने का हमारा अधिकार हमसे कोई नहीं छीन सकता।’

“और वे लौट आए। प्रतिदिन समाचार आते थे—अमृतसर में स्त्रियों को नग करके उनका जुलूस निकाला गया। सड़क पर खुले आसमान के नीचे उनके साथ बलात्कार किया गया। उनकी छातिया काट ली गई। लाहौर मे बच्चों का सिर भालो की नोक मे छेदकर शहर में घुमाया गया। जम्मू में गाड़ी रोककर सभी स्त्री-पुरुषों को मौत की घाट उतार दिया गया।

“तीसरे दिन उन लोगों का भी संदेश आ गया, ‘अपनी लड़किया सौंप दो और हमारे धर्म में आ जाओ।’

“हमारे हितैषी बृद्ध ने कहलवाया, ‘ये शर्तें मान लेने पर निकलने मे आसानी होगी।’ परंतु पिताजी ने जवाब भेज दिया, ‘जिंदगी भगवान की अमानत है, मैं उसका सौदा नहीं कर सकता।’

“उसी रात हमला हुआ। उनमें अधिकतर लोग बाहर के थे। पुलिस और फौज उनके साथ थी। वे सभी आधुनिक शस्त्रो से सुसज्जित थे।”

वह फिर दो क्षण मौन हो रहा। युगों जितने वे क्षण कितने भयानक थे, पर तभी उसने अपने को सहेज लिया, बोला, “हम लोग भी सजग थे। जी तोड़कर लड़े। कुछ

लोग भाग निकले, भागती हुड़ नारिया पकड़ी गई और उनके साथ वही सलूक हुआ जो कोई नर पिशाच कर सकता है। पिताजी ने मुझे बुलाकर कहा—‘मेरे परिवार की एक भी नारी उनके हाथ नहीं पड़ सकती।’

‘मैंने जवाब दिया, ‘मैं जीवन के अंतिम क्षण तक उनकी रक्षा करूँगा।’

‘वे बोले, ‘और अंतिम क्षण के बाद?’

‘मैं हठात् और उत्तर नहीं दे सकता। वे मुसकराए बोले, ‘बेटा, अंतिम क्षण आने से पहले ही उनका प्रबंध करना होगा। हमें उन्हे गोली से उड़ा देना होगा।’

‘मैं स्वीकार करूँगा, मैं कांप उठा था। मैंने पिताजी की आखो में झाका। वे मुसकरा रहे थे। मैंने यत्रवत् फौलादी दृढ़ता से कहा, ‘मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, पिताजी।’

‘एक एक करके हमारे साथी गिरते जा रहे थे। मैंने अपने दोनों भाइयों को गिरते देखा। मैंने देखा कि मेरा भतीजा पागलो की तरह राइफल चला रहा है, पर तभी उधर से एक गोली उड़ी और वह चिरनिदा में मो गया। पिताजी चिल्लाए, ‘जल्दी करो मेरे बेटे।’

‘दौड़ता हुआ मैं अंदर पहुँचा, मैंने सबसे पहले अपनी पत्नी को गोली मार दी। वह तब दोनों हाथों से मुह ढके भगवान को पुकार रही थी। फिर मैंने अपनी छोटी भाभी के प्राण लिए और फिर छोटी बहन के। तभी मेरी दूसरी बहन दौड़ी हुई आई, बोली, ‘भैया, बड़ी भाभी का पता नहीं लग रहा है।’

‘मैंने कहा, ‘राज, तुम अपनी चिंता करो।’

‘राज हँसी, ‘मैं तैयार हूँ, गोली छोड़ो।’’

यहाँ आकर उसका गला भर आया। वाणी रुध गई। क्षण-भर उसने अपने पिता की ओर देखा, फिर सकुचाते हुए कहा, “और मैंने राज को भी गोली मार दी। वह तब मुसकरा रही थी। कहाँ से आ जाता है यह साहस सकट के क्षणों में।”

उसने फिर अपने को सम्हाला, बोला, “पिताजी ने यह देखकर सुख की सास ली। वह इनकी अंतिम सुख की मास थी। वे लोग हर्ष से चिल्ला रहे थे और आग लगा रहे थे, परंतु मुझे बड़ी भाभी की तलाश थी। आग के प्रकाश में मैंने देखा, बड़ी भाभी घर के अब बच्चों को धेरे अपने कमरे में बैठी है। मुझे देखकर वे मुस्कराई, बोली—‘तुम जिन्दा हो, लो इन्हें सम्हालो। मैं इसी आग में जलना चाहती हूँ।’

‘मैंने कहा, ‘जलने का समय नहीं है भाभी, वह आ पहुँचे हैं। मैं तुम्हें गोली से मार देता हूँ।’

उसका साहस जवाब दे रहा था। वह तेजी से अपने पुत्र की कमर सहलाने लगा। मैंने अपने आंसू पोंछकर धीरे से कहा, “बच्चे कहाँ हैं?”

“बच्चे!” वह फुसफुसाया, “बच्चों को उन्होंने भालों की नोक पर रखकर घुमाया था। हरीश और अविनाश को मैं बचा सका था। वह भी उन बृद्ध की सहायता

से। न जाने कहा मेरे आकर वे इन दोनों को उठाकर ले गए और फिर एक दिन चुपके से कैप में छोड़ गए। लेकिन अविनाश रास्ते की थकावट न सहकर एक दिन सड़क के किनारे सदा के लिए सो गया.. ”

“तो आप निकल भागे थे?”

“नहीं, नहीं।” उसने कहा, “हम भागे नहीं। लड़ते-लड़ते जब हमारे पांच साँ प्राणियों में से पचास बच गए थे तो फौज ने हमें एकत्रित करके पास के नगर के एक स्कूल में बंद कर दिया। हम शरणार्थी बना दिए गए और सरकार हमारी रक्षा का ढिढ़ोरा पीटने लगी। वही से एक दिन एक काफिले के साथ भारत की ओर बढ़े ।”

सहसा उसकी दृष्टि पिताजी पर पड़ी। वे होश में आ रहे थे और टर्ड-भरे स्वर में पुकारने लगे, “यह क्या हुआ? मेरी बच्चिया? यह क्या हुआ!”

परंतु इस बार मित्र ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। मुझे अपने पैर दिखाते हुए बोला, “आगे की कहानी यहां लिखी हुई है। यह अकेले मेरी कहानी नहीं है, मेरे देश की कहानी है, आज मेरा देश घायल है, मेरे दोस्त।”

फिर एक गहराता मौन हम दोनों के बीच आकर उत्तर गया। मेरे अंतर्म मेर्दिया बजने लगी थी। कैप का ऊर कभी तीव्र हो उठता, कभी दब जाता। तभी सहसा मेरे मित्र ने कहा, “एक काम करोगे, दोस्त?”

“कहो।”

“दस रुपये मुझे उधार दे दो।”

मैंने चुपके से बिना कुछ कहे दस रुपये का एक नोट निकाला और उसके हाथ पर रख दिया। फिर उसे अपने साथ ला सकने मेरे असमर्थ लौट आया।

अगले दिन जब मैं कुछ कपड़े और दूसरा सामान लेकर वहां पहुंचा तो देखा—कैप के आगे सड़क पर कपड़ा बिछाए मेरा मित्र बैठा है। उसके आगे केले के गुच्छे, मूँगफली और मीठी गोली के डिब्बे रखे हैं।

मैं एक साथ करुणा और प्रशंसा से भर आया। मैंने उसके अदम्य उत्साह की मन ही मन प्रशंसा की ओर पूछा, “पिताजी कहां हैं?”

उसने जवाब दिया—“डाक्टर उन्हें अस्पताल ले गए हैं। उन्होंने विश्वास दिलाया है कि वे उनके दुःख दूर करने की पूरी कोशिश करेंगे। परंतु उनके दुःख तो अब उनके प्राणों के साथ ही दूर होगे।”

मैंने एकाएक कुछ जबाब नहीं दिया। चुपचाप ग्राहकों को देखने लगा। सच तो यह है कि मुझे वार्तालाप का कोई ठीक-ठीक सूत्र नहीं मिल रहा था। इसी लिए मैंने कल वाली प्रार्थना फिर दोहरा दी, “आप लोग मेरे घर चलकर रहे तो ।”

उसने मेरी आँखों मेरे झांका। फिर अद्भुत शांत स्वर में कहा—“तुम्हरे घर को देखकर मुझे अपने घर की याद आएंगी। मेरे दोस्त, तब क्या मैं अपने लड़खड़ाते हुए पैगे पर खड़ा रह सकूगा ?”

## मैं जिंदा रहूँगा

दबत कभी की समाप्त हो चुकी थी, मेहमान चले गए थे और चाद निकल आया था। प्राण ने मुक्त हास्य विखरते हुए राज की ओर देखा। उसको प्रसन्न करने के लिए वह इसी प्रकार के प्रयत्न किया करता था। उसके लिए वह मसूरी आया था। राज की दृष्टि तब दूर पहाड़ों के बीच नीचे जाने वाले मार्ग पर अटकी थी। हलकी चांदनी में वह धुधला बल खाता मार्ग अतीत की धुंधली रेखाओं को और भी धुधला कर रहा था। सच तो यह है कि तब वह भूत और भविष्य में उलझी अपने में खोई हुई थी। प्राण के मुक्त हास्य से वह कुछ चौंकी। दृष्टि उठाई, न जाने उसमें क्या था, प्राण कांप उठा, बोला, “तुम्हारी तबीयत तो ठीक है?”

राज ने उस प्रश्न को अनसुना करके धीरे से कहा, “आपके दाहिनी ओर जो युवक बैठा था, उसको आप अच्छी तरह जानते हैं?”

“किसको? वह जो नीला कोट पहने था?”

“हा, वही।”

“वह किशन के पास ठहरा हुआ है। किशन की पत्नी नीचे गई थी, इसी लिए मैंने उसे भी यहां आने को कह दिया था। क्यों, तुम उसे जानती हो?”

“नहीं, नहीं, मैं वैसे ही पूछ रही थी।”

“मैं समझ गया। वह दिलीप को बहुत प्यार कर रहा था। कुछ लोग बच्चों से बहुत प्रेम करते हैं।”

“हां, पर उसका प्रेम ‘बहुत’ से कुछ अधिक था।”

“क्या भतलब?”

“तुमने तो देखा ही था, दिलीप उनकी गोद में से उतरना नहीं चाहता था।”

प्राण ने हँसते हुए कहा, “बच्चा सबसे अधिक प्यार को पहचानता है। उसका हृदय शरत् की चांदनी से भी निर्मल होता है।”

तभी दोनों की दृष्टि सहसा दिलीप की ओर उठ गई। वह पास ही पलग पर मखमली लिहाफ ओढ़े सोया था। उसके सुनहरे धुंधराले बालों की एक लट मस्तक पर आ गई थी। गौर वर्ण पर उसकी सुनहरी छाया चढ़मा के प्रकाश के समान बड़ी मधुर लग रही थी। बच्चा सहसा मुसकराया। राज फुसफुसाई, “कितना प्यारा है!”

प्राण बोला, “ऐसा जान पड़ता है कि शैशव को देखकर ही किसी ने प्यार का आविष्कार किया था।”

दोनों की दृष्टि मिली। दोनों समझ गए कि इन निदोष उक्तियों के पीछे कोई तूफान उठ रहा है। पर बोला कोई कुछ नहीं। राज ने दिलीप को प्यार में उठाया और अदर कमरे में ले जाकर लिटा दिया। मार्ग में जब वह कधे से चिपका हुआ था तब राज ने उसे तनिक भींच लिया। वह कुनभुनाया पर पलग पर लेटते ही शान हो गया। वह तब कई क्षण खड़ी-खड़ी उसे देखती रही। लगा, जैसे आज से पहले उसने बच्चों को कभी नहीं देखा, पर शीघ्र ही उसका आनंद भंग हो गया। प्राण ने आकर कहा “अरे! ऐसे क्या देख रही हो, राज?”

“कुछ नहीं।”

वह हँसा, “जान पड़ता है, प्यार में भी छूत होती है।”

राज ने वहा से हटते हुए धीरे से कहा, “सुनिए, अपने उन मित्र के मित्र को अब यहाँ कभी न बुलाइए।”

इन शब्दों में प्रार्थना नहीं थी, भय था। प्राण की समझ में नहीं आया। चकित सा बोला, “क्या मतलब?”

राज ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बाहर चली गई और अपने स्थान पर बैठकर, पहले की भाँति उस बलखाते हुए मार्ग को देखने लगी। नीचे कुलियों का स्वर बद हो गया। ऊपर बादलों ने सब कुछ अपनी छाया में सर्मेट लिया था। चढ़मा का प्रकाश भी उसमे इस तरह घुल-मिल गया था कि उनकी भिन्नता रहस्यमय हो उठी थी। राज को लगा, बादलों की वह धुंध उसके अंदर भी प्रवेश कर चुकी है और उसकी शाति को लील गई है। सहसा उसकी आँखे भर आई और वह एक झटके के साथ कुरसी पर लुढ़ककर फूट-फूटकर रोने लगी। प्राण सब कुछ देख रहा था। वह न सकपकाया, न क्रुद्ध हुआ। उसी तरह खड़ा हुआ उस फूटते आवेग को देखता रहा। जब राज के उठते हुए निःश्वास कम हुए और उसने उठकर आँखे पोंछ डाली, तब उसने कहा, “दिल का बोझ उतर गया? आओ तनिक घूम आएं।”

राज ने भीगी दृष्टि से उसे देखा। एक क्षण ऐसी ही देखती रही। फिर बोली, “प्राण, मैं जाना चाहती हूँ।”

“कहाँ?”

“कहीं भी।”

प्राण बोला, “दुनिया को जानती हो? क्षण-भर पहले यहाँ सब कुछ स्पष्ट था पर अब नहीं है। सब कुछ बादलों की धुंध में खो गया है।”

“मैं भी इस धुंध में खो जाना चाहती हूँ।”

प्राण ने दोनों हाथ हवा में हिलाए और गभीर होकर कहा, “तुम्हारी इच्छा! तुम्ह किसी ने बाधा नहीं है, जा सकती हो।”

राज उठी नहीं। उसी तरह बैठी रही और सोचती रही। रात आकर चली गई उसका सोचना कम नहीं हुआ, बल्कि और भी गहरा हो उठा। उसने दिन-भर दिलीप

को अपने म अलग नहीं किया। स्वयं ले जाकर भाल पर झूले मे झूला लाई। स्वयं घुमाने ले गई और फिर खिला-पिलाकर सुलाया भी स्वयं। बहुत देर तक लोगी सुनाई थपथपाया, महलाया। वह सो गया, तो रोई और रोते-रोते बाहर बरामदे में जाकर अपने स्थान पर बैठ गई। वही चढ़मा का धुंधला प्रकाश, वही बादलों की धुध, वही प्रकृति की भाति ऊपर अपूर्व शाति और अदर तूफान का गरज। प्राण ने आज रात को कुछ भी न कहने का प्रण कर लिया था। वह उसकी किसी इच्छा मे बाधा नहीं बना। अब भी जब राज दृष्टि गडाए उस बलखाते मार्ग को छूटने की विफल चेष्टा कर रही थी वह कुरसी की पीठ पर हाथ रखे हुए खड़ा था। तभी लगा, कोई जीने में आ रहा है। राज एकाएक बोल उठी, “वे आ गए।”

“कौन?”

“आपके मित्र के मित्र।”

वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि वे मित्र बरामदे मे आते हुए दिखाई दिए। प्राण ने देखा—वे अकेले नहीं हैं, उनके साथ एक मुर्ख तथा एक नारी भी है। दोनों सभ्य लगते हैं। नारी विशेष मुदर है, पर इस समय वे अनिश्चय गंभीर हैं। उनकी आंखे बताती हैं कि वे व्यग्र भी हैं। प्राण उन्हे देखकर कांपा तो, पर आगे बढ़कर उसने उनका स्वागत किया। मुस्कराकर बोला, “आइए, आइए, नमस्ते! किशोर नहीं आए?”

“जी, किशोर नहीं आ सके।”

“बैठिए, आइए। आप इधर आइए।”

बैठ चुके तो प्राण ने अपरिचितों की ओर देखकर पूछा, “आपका परिचय।”

“यह मेरी बहन है और यह बहनी।”

ओह! प्राण मुस्कराया, हाथ जोड़े, दृष्टि मिली, जैसे कुछ हिला हो। फिर भी सभलकर बोला, “आप आजकल कहाँ रहते हैं?”

मित्र ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, “कहा रहते। विधाता ने ऐसा डखाड़ा है कि कही जमते नहीं बनता।”

प्राण बोला, “हाँ भाई। वह तो जैसा हुआ, सभी जानते हैं, पर उसकी चर्चा किससे करें।”

और फिर मुड़कर राज से, जो बुत बनी बैठी थी, कहा, “अरे भई, चाय-बाय तो देखो।”

मित्र एकदम बोले, “नहीं, नहीं, चाय के लिए कप्ट न करें। ये तो एक बहुत आवश्यक काम से आए हैं।”

प्राण बोला, “कहिए।”

मित्र कुछ जिज्ञाके। प्राण ने कहा, “शायद एकात चाहिए।”

“जी।”

“आइए उथर बैठेंगे।”

वह उठा और काने मे पड़ी हुई एक कुरसी पर जा बैठा। मित्र भी पास की दूसरी कुरसी पर बैठ गए। एक क्षण रुककर बोले, “क्षमा कीजिए, आप से एक प्रश्न पूछता चाहता हू, है तो वह बेहूदा ही।”

“कोई बात नहीं,” प्राण मुसकराया, “प्रश्न पूछना कभी बेहूदा नहीं होता।”

मित्र ने एकदम सकपकाकर पूछा, “दिलीप आपका लड़का है?”

प्राण का हृदय धक्-धक् कर उठा। ओह, यह बात थी। उसने अपने को संभाला और निश्चित स्वर मे कहा, “जी हा। आज तो वह मेरा ही है।”

“आज तो?”

“जी हाँ, वह सदा मेरा नहीं था।”

“सच?”

“जी हा, काफिले के साथ लौटते हुए राज ने उसे पाया था।”

“बया।” मित्र हर्ष और अचरज से कांप उठे, “कहा पाया था?”

“लाहौर के पास एक ट्रेन मे।”

“प्राण बाबू, प्राण बाबू। आप नहीं जानते, यह बच्चा मेरी बहन का है। मै उसे देखते ही पहचान गया था। ओह, प्राण बाबू। आप नहीं जानते, उनकी क्या हालत हुई।” और उछलकर उसने पुकारा, “भाई साब! रमेश मिल गया।”

और फिर प्राण को देखकर कहा, “आप प्रमाण चाहते हैं? मेरे पास उसके फोटो हैं। यह देखिए।”

और उसने जेब से फोटो पर फोटो निकालकर सकपकाए हुए प्राण को चकित कर दिया। क्षण-भर मे वहा का दृश्य पलट गया, रमेश के माता-पिता पागल हो उठे। मा ने तड़पकर कहा, “कहा है? रमेश कहाँ है?”

राज ने कुछ नहीं देखा, वह शीघ्रता से अंदर गई और दिलीप को छाती से चिपकाकर फफक उठी। दूसरे ही क्षण वे सब उसके चारो ओर इकट्ठे हो गए। वे सब उद्धिम थे, पर प्राण अब भी शांत था। उसने धीरे से कहा, “राज, दिलीप की माँ आ गई है।”

“उमकी माँ!” राज ने फफकते हुए कहा, “तुम सब चले जाओ। तुम यहा क्यो आए? दिलीप मेरा है। मैं उसकी माँ हूं।”

दिलीप (रमेश) की माँ रोती हुई बोली, “सचमुच! मा तुम्हीं हो। तुमने उसे पुनर्जन्म दिया है।”

सुनकर राज काप उठी। उसने दृष्टि उठाकर पहली बार उस मा को देखा और देखती रह गई। तब तक दिलीप जाग चुका था और उस चिल्ल-पो में घबराकर, किसी भी शर्त पर राज की गोद से उतरने को तैयार नहीं था। वह नवागंतुको को देखता और चीख पड़ता।

साल-भर पहले जब राज ने उसे पाया था, तब वह पूरे वर्ष का भी नहीं था। उस

समय जब लोग प्राणों के भय से भाग रहे थे। मनुष्य मनुष्य का रक्त उलीचने में होड़ ले रहा था। नारी का सम्मान और शिशु का शैशव सब पराभूत हो चुके थे। मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो चुका था। भागते मनुष्यों पर राह के मनुष्य टूट पड़ते और लाशों के द्वे लगा देते, रक्त बहता और उसके साथ ही बह जाती मानवता। ऐसी ही एक द्वे दिन में राज भी थी। हमला होने पर जब वह संज्ञाहीन-सी अज्ञात दिशा की ओर भागी, तो एक बर्थ के नीचे से अपने सामान के भुलावे में वह जो कुछ उठाकर ले गई, वही बाद में दिलीप बन गया। यह एक अद्भुत बात थी। अपनी अंतिम सप्ति खोकर उसने एक शिशु को पाया, जो उस रक्त-वर्षा के बीच बेखबर सोया हुआ था। उसने कैप में आकर जब उस बालक को देखा तो अनायास ही उसके मुह से निकला, “मेरे पति और मेरे दोनों बच्चों को मुझसे छीनकर आपने यह कैसा दान दिया है, मेरे प्रभु!”

लेकिन तब अधिक सोचने का अवसर नहीं था। वह भारत की ओर दौड़ो। मार्ग में वे अवसर आए, जब उसे अपने और उस बच्चे के बीच किसी एक को चुनना था, पर हर बार वह प्राणों पर खेलकर उसे बचा लेने में सफल हुई। मौत भी जिस बालक को उससे छीनने में असफल रही, वही अब कुछ क्षणों में उससे अलग हो जाएगा, क्योंकि वह उसका नहीं था। क्योंकि वह उसकी माँ नहीं थी। नहीं, नहीं, दिलीप उसका है!

और वह फफक-फफककर रोने लगी। प्राण ने और भी पास आकर धीरे से शात स्वर में कहा, “राज! माँ बनने से भी एक बड़ा सौभाग्य होता है और वह है किसी के मातृत्व की रक्षा।”

“नहीं, नहीं!” वह उसी तरह बोली, “मैं वह सौभाग्य नहीं चाहती।”

“सौभाग्य तुम्हारे न चाहने से वापस नहीं लौट सकता राज, पर हो। तुम चाहो तो सौभाग्य को दुर्भाग्य में पलट सकती हो।”

राज सहसा प्राण की ओर देखकर बोली, “तुम कहते हो, मैं इसे दे दूँ?”

“मैं कुछ नहीं कहता, वह उन्हीं का है। तुम उनका खोया लाल उन्हें सौप रही हो, इस कर्तव्य में जो सुख है, उससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा? उस सौभाग्य को क्षणिक कायरता के वश होकर ढुकराओ नहीं, राज!” राज ने एक बार और प्राण की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे अपने हाथ आगे बढ़ाए और दिलीप को उसकी माँ की गोदी में दे दिया। उसके हाथ काप रहे थे, होंठ काप रहे थे। जैसे ही दिलीप को उसकी माँ ने छाती से चिपकाया, राज ने रोते हुए चिल्लाकर कहा, “जाओ! तुम सब चले जाओ, अभी। इसी वक्त!”

प्राण ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि जीने तक उनको छोड़ने आया। उन लोगों ने बहुत कुछ कहना चाहा, पर उसने कुछ नहीं सुना। बोला, “मुझे विश्वास है, बच्चा आपका है। वह आपको मिल गया। आपका-सा सौभाग्य सबको प्राप्त हो, लेकिन मेरी एक प्रार्थना है।”

“जी कहिए, हमें आपकी हर बात स्वीकार है।”

प्राण ने बिना सुने कहा, “कृपा कर अब आप लोग इधर न आए।”

वे चौके “क्या?”

“जी, आपकी बड़ी कृपा होगी।”

“पर सुनिए तो।”

प्राण ने कुछ न सुना और अगले दिन मसूरी को प्रणाम करके आगे बढ़ गया। राज की अवस्था मुरदे जैसी थी। वह पीली पड़ गई थी। उसके नेत्र सूज गए थे। प्राण ने उस क्षण के बाट फिर एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा, जो उसे दिलीप की याद दिला सके, लेकिन याद क्या दिलाने से आती है। वह तो अतर मे सोते की भाँति उफनती है, राज के अतर मे भी उफनती रही। उसी उफान को शात करने के लिए प्राण मसूरी से लखनऊ आया। वहां से कलकत्ता और फिर मद्रास होता हुआ दिल्ली लौट आया। दिन बीत गए। महीने भी आए और चले गए। समय की महायता पाकर राज दिलीप को भूलने लगी। प्राण ने फिर व्यापार मे ध्यान लगाया, पर साथ ही उसके मन मे एक आकॉशा बनी रही। वह राज को फिर शिशु की अठखेलियों मे खोया देखना चाहता था। वह कई बार अनाथालय और शिशु-गृह गया, पर किसी बच्चे को घर न ला सका। जैसे ही वह आगे बढ़ता, कोई अदर से बोल डठता, “न जाने कौन कब आकर इसका भी मां-बाप होने का दावा कर बैठे।”

और वह लौट आया। इसके अलावा बच्चे की चर्चा चलने पर राज को दुख होता था। कभी-कभी तो दौरा भी पड़ जाता था। वह अब एकांतप्रिय, सुस्त और अत्मुखी हो चली थी। प्राण जानता था कि यह प्रभाव अस्थायी है, अंतर का आवेग इस आवरण को बहुत शीघ्र उतार फेंकेगा। नारी की जड़ें जहां हैं, उसके विपरीत फल कहा प्रकट हो सकता है। वह एक दिन किसी बच्चे को घर ले आएगा और कौन जानता है, तब तक.

वह इसी उधेड़बुन में था कि एक दिन उसने होटल से लौटते हुए देखा कि एक व्यक्ति उन्हें घूर-घूरकर देख रहा है। उसने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। लोग देखा ही करते हैं। आज के युग का यह फैशन है। उसके पड़ोस में एक सज्जन रहते हैं। जब-तब अवसर पाकर छत की दीवार से झाककर राज को देखा करते हैं। राज ने कई बार उनकी इस हरकत की शिकायत भी की थी। लेकिन अगले दिन, फिर तीसरे दिन चौथे दिन यहां तक कि प्रतिदिन वही व्यक्ति उसी तरह उनका पीछा करने लगा। अब प्राण को यह बुरा लगा। उसने समझा, इसमे कोई रहस्य है, क्योंकि वह व्यक्ति राज के सामने कभी नहीं पड़ता था और न राज ने अब तक उसे देखा था। कम से कम वह इस बात को नहीं जानता था। यही सब कुछ सोचकर प्राण ने उस व्यक्ति से मिलना चाहा। एक दिन वह ही होटल आया और उसने उस व्यक्ति को पूर्वत अपने

एकदम काप उठा, बोला, "क्या है?"

प्राण ने शात भाव से कहा, "यहीं तो मैं आपसे पूछने आया हूँ।"

अचरज से वह व्यक्ति जिस तरह कापा, उसी तरह एकदम ढूढ़ होकर बोला, "तो आप समझ गए? क्षमा करिए, मैं स्वयं आपसे बात करने वाला था।"

"अब तक क्यों नहीं कर सके?"

उसने उसी तरह कहा, "क्योंकि मैं पूर्ण विश्वस्त नहीं था और आप जानते हैं, आज के युग में ऐसी-वैसी बाते करना मौत को बुलाना है।"

प्राण उसकी बाणी से आश्वस्त तो हुआ, पर उसका हृदय धक्का-धक्का कर उठा। उसने कहा, "आप ठीक कहते हैं, पर अब आप निस्संकोच होकर जो चाहें, कह सकते हैं।"

वह बोला, "बात ऐसी ही है। आप बुरा न मानिए।"

"आप कहिए"

वह तनिक दिल्लिका, फिर शीघ्रता से बोला, "आपके साथ जो नारी रहती हैं, वह आपकी कौन है?"

"आपका मतलब?"

"जी।"

प्राण सभला, बोला, "वह मेरी सब कुछ है और कुछ भी नहीं है।"

"जी, मैं पूछता था, क्या वह आपकी पत्नी है?"

"मेरी पत्नी..."

"जी।"

"नहीं।"

"नहीं?"

"जी हाँ।"

"आप सच कह रहे हैं?" उसकी बाणी में अचरज ही नहीं, हर्ष भी था।

"जी हाँ। मैं सच कहता हूँ। अग्नि को साक्षी करके मैंने कभी उससे विवाह नहीं किया।"

"फिर?"

"लाहौर से जब भागा था, तब मार्ग में एक शिशु के साथ उसे मैंने संज्ञाहीन अवस्था में एक खेत में पाया था।"

"तब आप उसे अपने साथ ले आए?"

"जी हाँ।"

"फिर क्या हुआ?"

"होता क्या? तब से वह मेरे साथ है।"

"लोग उसे आपकी पत्नी समझते हैं?"

“यह तो स्वाभाविक है। पुरुष के साथ इस तरह जो नारी रहती है, वह पत्नी ही होगी, इससे आगे आज का आदमी क्या सोच सकता है? पर आप ये सब बाते क्यों पूछते हैं? क्या आप उसे जानते हैं?”

“जी,” यह कांपा, बोला, “वह वह मेरी पत्नी है।”

“आपकी पत्नी?” प्राण सिहर उठा।

“जी।”

“और आप उसे चोरों की भाँति ताका करते हैं?”

अब उसका मुह पीला पड़ गया और नेत्र झुक गए। पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या हुआ, उसने एक झटके के साथ गरदन ऊँची की, बोला, “उसका एक कारण है मैं छिपाऊंगा नहीं। उन मुसीबत के क्षणों में मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका था।”

प्राण न जाने क्यों हँस पड़ा, “छोड़कर भाग गए थे। अकसर ऐसा हुआ है।”

“भागा तो नहीं था, पर प्राणों पर खेलकर उस तक आ नहीं सका।”

“वह जानती है?”

“नहीं कह सकता।”

“आपको भय है कि वह जानती होगी?”

“भय तो नहीं, पर ग्लानि अवश्य है।”

प्राण के भीतर के मन को जैसे कोई धीरे-धीरे छुरी से चीरने लगा हो, पर ऊपर से वह उसी तरह शात स्वर में बोला, “तो राज आपकी पत्नी है, सच?”

उस व्यक्ति ने रुधे कंठ से कहा, “कैसे कहूं? मैंने उसको ढूँढ़ने के लिए क्या नहीं किया? सभी कैपो मे, रेडियो स्टेशन पर, पुलिस में—सभी जगह उसकी रिपोर्ट मौजूद है।”

प्राण बोला, “आप उसे ले जाने को तैयार हैं?”

वह ज़िङ्गका नहीं, कहा, “जी, इसीलिए तो रुका हूं।”

“आपको किसी प्रकार का संकोच नहीं?”

“संकोच!” उसने कहा, “संकोच करके मैं अपने पापों को और नहीं बद्दाना चाहता, महात्माजी..।”

“तो फिर आइए।” प्राण ने शीघ्रता से उसकी बात काटते हुए कहा, “मेरे साथ चलिए।”

“अभी?”

“इसी बक्त। आप कहां रहते हैं?”

“जालंधर।”

“काम करते हैं?”

“जी हां, मुझे स्कूल में नौकरी मिल गई है।”

“आपके बच्चे तो दोनों मारे गए थे।”

“जी, एक बच गया था।”

“सच?”

“जी, वह मेरे पास है।”

“प्राण का मन अचानक हय मे खिल उठा। शान्ति से बोला, “तो सुनिए, राज धर पर है। आप उसे अपने साथ ले जाइए। मैं पत्र लिखे देता हूँ।”

“आप नहीं चलेंगे?”

“जी नहीं। मैं बाहर जा रहा हूँ। लखनऊ मे एक आवश्यक कार्य है। तीन चार दिन मे लौटूगा, आप उसे ले जाइएगा। कहना, उसका पुत्र जीवित है। मुझे देखकर वह दुखी होगी। समझे न।”

“समझ गया।”

“आप भाग्यवान हैं, मैं आपको बधाई देता हूँ और आपके साहस की प्रशंसा करता हूँ।”

बहु व्यक्ति कृतज्ञ, अनुगृहीत कुछ जबाब दे कि प्राण ने एक ऐसके हाथ मे थमाया और बिजली की भाँति गायब हो गया।

पत्र मे लिखा था—

“राज।

बहादुर लोग गलती कर सकते हैं, पर धोखा देना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। फिर भी दो शब्द मुझे तुम्हारे पास लाने को पर्याप्त है। प्रयत्न करना उनकी आवश्यकता न पड़े। मुझे जानती हो मरने तक जीता रहूँगा।

—प्राण”

यह व्यक्ति ठगा-सा बहुत देर तक वहीं खड़ा रहा। कंगाल की फटी झोली मे कोई रत्न डाल गया हो ऐसी उसकी हालत थी। पर जन्म से तो वह कंगाल नहीं था, इसलिए साहस ने उसे धोखा नहीं दिया और वह प्राण के बताए मार्ग पर चल पड़ा।

पूरे पद्रह दिन बाद प्राण लौटा। जब तक उसने द्वार को नहीं देखा, उसके प्राण सकते मे आए रहे। जब देखा कि द्वार बंद है और उसका चिर-परिचित ताला लगा है तो उसके प्राण तेजी से कपिये। किवाड़ खोलकर वह ऊपर चढ़ता ही चला गया। आगे कुछ नहीं देखा, देख ही नहीं सका। पालना पड़ा था, उससे ठोकर लगो और वह पलंग की पट्टी से जा टकराया। मुख से एक आह निकली। माथे मे दर्द का अनुभव हुआ। खून निकल्य आया था। उसने हाथ से चोट को सहलाया। आँखों ने तभी खून देखा, फिर पालना देखा, फिर धर देखा। सब कहीं मौन का राज्य था। प्रत्येक वस्तु पूर्वतः अपने स्थान पर सुरक्षित थी। प्राण के मन ने उठा, पुकारे—‘राज।’

पर वह कांपा- राज कहाँ है? राज तो चली गई। गज का पति आया था। राज का पुत्र जीवित है। सुन्दर भी कैसा छल करता है। जा-जाकर लौट आता है। राज का

पात मिला पुत्र मिला दिलाप का मा व्याप मिल आर मुझे क्या मिला

उसन गर्नन को जोग से झटका दिया फुसफुसाया औह मं कायर हा चला  
मुझ तो वह मिला, जो किसी को नहीं मिला।

तभी सहसा पास की छत पर खटखट हुई। राज को घूरने वाले पड़ोसी ने उधर  
झाका। प्राण को देखा, तो गभीर होकर बोला, "आप आ गए?"

"जी हा!"

"कहा चले गए थे?"

"लखनऊ!"

"बहुत आवश्यक कार्य था क्या? आपके पीछे तो मुझे खेद है "

"जी, क्या?"

"आपकी पत्नी "

"मेरी पत्नी?"

"जी, मुझे डर है कि वह किसी के साथ चली गई।"

"चली गई? सच! आपने देखा था?"

"प्राण बाबू! मैं तो पहले ही जानता था। उसका व्यवहार ऐसा ही था। कोई  
पद्धति दिन हुए आपके पीछे एक व्यक्ति आया था। पहले तो देखते ही आपकी पत्नी  
ने उसे डाँटा।"

"आपने सुना?"

"जी हा, मैं यहीं था। शोर सुनकर देखा, वह कुछ होकर चिल्ला रही  
है—"जाओ, चले जाओ। तुम्हे किसने बुलाया था? तुम क्यों आए? मैं उन्हें पुकारती  
हूँ?"

"सच, ऐसा कहा?"

"जी हा!"

"फिर?"

"फिर क्या, प्राण बाबू! वे बाबू साहब बड़े ढीठ निकले, गए नहीं। एक पत्र  
आपकी पत्नी को दिया, फिर हाथ जोड़े। फिर ऐरो मे पड गए।"

"क्या यह सब आपने देखा था?"

"जी हा, बिलकुल देखा था।"

"फिर?"

"फिर वे ऐरो में पड गए, पर आपकी पत्नी रंती रही। तभी अचानक उसने न  
जाने क्या कहा। वह कांपकर वहीं गिर पड़ी। फिर तो उसने, क्या कहु, लाज लगती  
है। जी मैं तो आया कि कूदकर उसका गला घोंट दू, पर मैं रुक गया। दूसरे का मामला  
है। आप आते ही होंगे, रात तक राह देखी, पर आप नहीं आए। सबों उठकर देखा,  
तो वे दोनों लापता थे।"

“उसी रात चले गए?”

“जी हा।”

प्राण ने सांस खींची, “तो वे सच्चे थे, बिलकुल सच्चे!”

पड़ोसी ने कहा, “क्या?”

“जी हाँ, उन्होंने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था।” और फिर अचरज से बुत बने पड़ोसी की ओर देखकर बोला, “वे भाई राज के पति थे।”

“राज के पति?” चकित पड़ोसी और भी अचकचाया।

“जी हाँ, पंजाब से भागते हुए हम लोगों के साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही हैं। राज को भी मैंने लाशों की ढेर में से उठाया था। वह तब जानती थी कि उसके पति मर गए हैं, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी।”

पड़ोसी अभी तक अचकचा रहा था, बोला, “आपके साथ रहने पर भी उन्हे राज को ले जाने में संकोच नहीं हुआ?”

प्राण ने कहा, “सो तो आपने देखा ही था।”

वह क्या कहे, फिर भी ठगा-सा बोला, “आपका अपना परिवार कहा है?”

“भागते हुए मेरी पत्नी और माँ-बाप दरिया में बह गए थे। बच्चे एक-एक करके रास्ते में सो गए।”

“भाई साहब!” पड़ोसी जैसे चीख पड़ेगा, पर वह बोल भी न सका। मुंह उसका खुला-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई।

## मेरा वतन

उसने सदा की भाति तहमत लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तंजी से झटका देता था, परंतु पैर यंत्रवत् आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह कांप उठता था, पर उसकी गति पर अकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नहीं था। वे अकसर उसका मजाक उडाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊचे स्वर में गालिया पुकारते, पर जैसे ही उम्रकी दृष्टि उठती— न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आखों में क्या होता था— वे सहम जाते, सोडाबाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अदरूनी बस्ती को शाले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, “जरूर इसका सब-कुछ लूट गया है” “इसके रिश्तेदार मारे गए हैं..” “नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिड़िया के बच्चे की ची-चीं में पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है” “और यह सब देखता रहा है!”

“हाँ, यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आखों में उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।”

“डर,” किसी ने कहा था, “इसकी आंखों में मौत की तसवीर है, वह मौत जो कत्ल, खूरेजी और फांसी का निजाम सभालती है।”

एक बार एक राह चलते दर्दमंद ने एक दुकानदार से पूछा, “यह कौन है?” दुकानदार ने जवाब दिया, “मुसीबतजदा है, जनाब। अमृतमर में रहता था। काफिरों ने सब कुछ लूटकर इसके बीबी-बच्चों को आग में भून दिया।”

“जिंदा?” राहगीर के मुह से अचानक निकल गया।

दुकानदार हँसा, “जनाब किस दुनिया में रहते हैं? वे दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी। अब तो वह जिदों को जलाती है।”

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी। फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, “कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।”

“उसी रात चले गए?”

“जी हा।”

प्राण ने सांस खींची, “तो वे सच्चे थे, बिलकुल सच्चे।”

पडोसी ने कहा, “क्या?”

“जी हा, उन्होंने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था।” और फिर अचरज से बुत बने पडोसी की ओर देखकर बोला, “वे भाई राज के पति थे।”

“राज के पति?” चकित पडोसी और भी अचकचाया।

“जी हाँ, पजाब से भागते हुए हम लोगों के साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही हैं। राज को भी मैंने लाशों की ढेर में से उठाया था। वह तब जानती थी कि उसके पति मर गए हैं, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी।”

पडोसी अभी तक अचकचा रहा था, बोला, “आपके साथ रहने पर भी उन्हे राज को ले जाने में सकोच नहीं हुआ?”

प्राण ने कहा, “सो तो आपने देखा ही था।”

वह क्या कहे, फिर भी ठगा-सा बोला, “आपका अपना परिवार कहाँ है?”

“भागते हुए मेरी पत्नी और मां-बाप दरिया में बह गए थे। बच्चे एक-एक करके रास्ते में सो गए।”

“भाई साहब!” पडोसी जैसे चीख पड़ेगा, पर वह बोल भी न सका। मुंह उसका खुला-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई।

## मेरा बतन

उसने सदा की भाति तहमत लगा लिया था और फैज ओढ़ ली थी। उसका मन कभी-कभी साइकिल के ब्रेक की तरह तजी से झटका देता था, परतु पैर यत्रवत् आगे बढ़ते चले जाते थे। यद्यपि इस शक्ति-प्रयोग के कारण वह बेतरह काप उठता था, पर उसकी गति पर अकुश नहीं लगता था। देखने वालों के लिए वह एक अर्ध-विक्षिप्त से अधिक समझदार नहीं था। वे अकसर उसका मजाक उडाना चाहते थे। वे कहकहे लगाते और ऊचे स्वर में गालिया पुकारते, पर जैसे ही उसकी दृष्टि उठती— न जाने उन निरीह, भावहीन, फटी-फटी आखों में क्या होता था— वे सहम जाते, सोडावाटर के तूफान की तरह उठने वाले कहकहे मर जाते और वह नजर दिल की अंदरूनी बस्ती को शोले की तरह सुलगाती हुई, फिर नीचे झुक जाती। वे फुसफुसाते, “‘जरूर इसका सब-कुछ लुट गया है।’” “‘इसके रिश्तेदार मारे गए हैं।’” “‘नहीं, नहीं, ऐसा लगता है कि काफिरों ने इसके बच्चों को इसी के सामने आग में भून दिया है या भालों की नोक पर टिकाकर तब तक घुमाया है जब तक उनकी चीख-पुकार बिल्ली की मिमियाहट से चिडिया के बच्चे की चीं-ची पे पलटती हुई खत्म नहीं हो गई है’”

“‘और यह सब देखता रहा है।’”

“‘हाँ, यह देखता रहा है। वही खौफ इसकी आंखों में उतर आया है। उसी खौफ ने इसके रोम-रोम को जकड़ लिया है। वह खौफ इसके लहू में इतना घुल-मिल गया है कि इसे देखकर डर लगता है।’”

“‘डर,’” किसी ने कहा था, “‘इसकी आखो में मौत की तसवीर है, वह मौत जो कत्ल, खूरेजी और फांसी का निजाम सभालती है।’”

एक बार एक राह चलते दर्दमद ने एक दुकानदार से पूछा, “‘यह कौन है?’” दुकानदार ने जवाब दिया, “‘मुसीबतजदा है, जनाब। अमृतसर में रहता था। काफिरों ने सब कुछ लूटकर इसके बीबी-बच्चों को आग में भून दिया।’”

“‘जिंदा?’” राहगीर के मुह से अचानक निकल गया।

दुकानदार हँसा, “‘जनाब किस दुनिया में रहते हैं? वे दिन बीत गए जब आग काफिरों के मुरदों को जलाती थी। अब तो वह जिंदो को जलाती है।’”

राहगीर ने तब कड़वी भाषा में काफिरों को वह सुनाई कि दुकानदार ने खुश होकर उसे बैठ जाने के लिए कहा। उसे जाने की जल्दी थी। फिर भी जरा-सा बैठकर उसने कहा, “‘कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है।’”

“जी हा बकोल था, हाइकोर्ट का बड़ा बकोल। लाखों रुपयों की जायटाद छोड़ आया हे।”

“अच्छा जी।”

“जनाब क्या पूछते हैं? आदमी आसानी से पागल नहो होता। दिल पर चोट लगती है तभी वह टृटता है। पर जब एक बार टृट जाता है तो फिर नहीं जुड़ता। आजकल चागे तरफ यहाँ कहानी है। मेरा घर का मकान नहीं था, लेकिन दुकान मे सामान इतना था कि तीन मकान बन सकते थे।”

“जी हा,” राहगीर ने सदय होकर कहा, “आप ठीक कहते हैं। पर आपके बाल-बच्चे तो ठीक आ गए हैं?”

“जी हा, खुदा का फजल है। मैंने उन्हे पहले ही भेज दिया था। जो पीछे रह गए थे, उनकी न पूछिए। रोना आता है। खुदा गारत करे हिंदुस्तान को।”

राहगीर उठा। उसने बात काटकर इतना ही कहा, “देख लेना, एक दिन वह गारत होकर रहेगा। खुदा के घर मे देर है, पर अंधेर नहीं।”

और वह चला गया, परंतु उस अर्ध-विशिष्ट व्यक्ति के क्रम में कोई अंतर नहीं पड़ा। वह उसी तरह धीरे-धीरे बाजारो में से गुजरता, शरणार्थियों की भीड़ में धक्के खाता, परंतु उस ओर देखता नहीं। उसकी दृष्टि तो आसपास की दुकानों और मकानों पर जा अटकती थी। अटकती ही नहीं, चिपक जाती थी। मिकनातीस लोहे को खीच लेती है, बैसे ही वे बेजबा इमारते, जो जगह-जगह पर खड़हर की शक्ल में पलट चुकी थीं, उसकी नजर और नजर के साथ उसके मन, बुद्धि, चित्त और अहकार सभी को अपनी ओर खीच लेती थीं और फिर उसे जो कुछ याद आता, वह उसे, पैर के तलुए से होकर मिर मे निकल जाने वाली सूली की तरह काटता हुआ, उसके दिल के कोने मे जा बैठता था। इसी कारण वह आज तक मर नहीं सका था, केवल सिसकिया भरता रहता था...वे सिसकिया जिनमें न शब्द थे, न आसु। वे सूखी हिचकियों की तरह उसे बेजान किए हुए थीं।

सहमा उसने देखा— सामने उसका अपना मकान आ गया है। उसके अपने दादा ने उसे बनाया था। उसके ऊपर के कमरे मे उसके पिता का जन्म हुआ था। उसी कमरे मे उसने आखे खोली थीं और उसी कमरे मे उसके बच्चों ने पहली बार प्रकाश-किरण का स्पर्श पाया था। उस मकान के कण-कण मे उसके जीवन का इतिहास अकित था। उसे फिर बहुत-सी कहानिया याद आने लगी। वह तब उन कहानियों में इतना डूब गया था कि उसे परिस्थिति का तनिक भी ध्यान नहीं रहा। वह जीने पर चढ़ने के लिए आगे बढ़ा और जैसा कि वह सदा करता था, उसने घंटी पर हाथ डाला। बेजान घटी झोर मचाने लगी और तभी उसकी नीद टूट गई। उसने अपने चारों देखा। वहा मब एक ही तरह के आदमी नहीं थे। वे सब एक ही जबान नहीं बोलते थे। फिर भी उनमें ऐसा कुछ था जो उन्हे एक कर रहा था और वह इस एके मे अपने लिए कोई जगह नहीं पाता

था उमन तजी स जाग बहू जाना चाहा, परं तभी ऊपर से एक व्यक्ति उतर आया। उसने ढीला पाजामा और कुर्ता पहना था, पृथा, “कहिए जनाव्र?”

बहू अक्षयकाया, “जी।”

“जनाव्र किसे पूछते थे?”

“जी, मैं पूछता था कि मकान खाली है?”

ढीले पाजामे वाले व्यक्ति ने उसे ऐसे देखा कि जैसे वह कोई चोर या उठाइगिरा हो। फिर मुह बनाकर तलखी से जवाब दिया, “जनाव्र! तशरीफ ले जाइए बरना”

आगे उसने कहा कहा, वह यह सुनने के लिए नहीं रुका, बढ़ा चला गया। उसकी गति में तूफान भर उठा, उसके मस्तिष्क में बवडर उठ खड़ा हुआ और उसका चित्तन गति की चट्टान पर टकराकर पाणि-पाणि हो गया। उसे जब होश आया तो वह अनाग्कली से लेकर माल तक का समूचा बाजार लाघ चुका था। वह बहुत दूर निकल आया था।

यहा आकर वह काया। एक टीस ने उसे कुरेद डाला, जैसे बद्दई ने पेच में पेचकस डालकर पूरी शक्ति के साथ उसे घुमाना शुरू कर दिया हो। हाईकोर्ट की शानदार इमारत उसके सामने थी। वह दूष्ट गडाकर उसके कंगूरों को देखने लगा। उसने बरामदे की कल्पना की। उसे याद आया—“वह कहाँ बैठता था, वह कौन मे कपड़े पहनता था कि उसका हाथ सिर पर गया, जैसे उसने सांप को छुआ। उसने उसी क्षण हाथ खींच लिया, पर मोहक स्वप्नों ने उसकी रगीन दुनिया की रगीनी को उसी तरह बनाए रखा। वह तब इस दुनिया में इतना डूब चुका था कि बाहर की जो वास्तविक दुनिया है, वह उसके लिए भृगतृष्णा बन गई थी। उसने अपने पैरों के नीचे की धरती को ध्यान से देखा, देखता रहा। सिनेमा की तसवीरों की तरह अतीत की एक दुनिया, एक शानदार दुनिया उसके अंतस्तल पर उभर आई। वह इसी धरती पर चला करता था। उसके आगे-पीछे उसे नमस्कार करते, सलाम झुकाते, बहुत-से आदमी आते और जाते थे। दूसरे बकील हाथ मिलाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करते और.

विचारों के हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगाई। उसका ध्यान जज के कमरे में जा पहुंचा। जब वह अपने केस में बहस शुरू करता था तो कमरे में सन्नाटा छा जाता था। केवल उसकी बाणी की प्रतिध्वनि गूजा करती थी, केवल ‘मी लार्ड’ शब्द बार-बार उठता और ‘मी लार्ड’ कलम रखकर उसकी बात सुनते

हनुमान फिर कूदे और वह अब बार एसोसिएशन के कमरे में आ गया था। इसमें न जाने कितने कहकहे उसने लगाए थे। कितनी बार राजनीति पर उत्तेजित कर देने वाली बहसें की थी। वहीं बैठकर उसने महापुरुषों को अनेक बार श्रद्धाजलियाँ भेंट की थी। विदा और स्वागत के खेल खेले थे।

वह अब उस कुरसी के बारे में सोचने लगा, जिस पर वह बैठा करता था। तब उसे कमरे की दीवारों के साथ-साथ दरवाजे के पायदान की याद भी आ गई और वह

पायदान को देखने के लिए आनुर हो उठा। वह मब कुछ भूलकर सदा की तरह झूमता हुआ आगे बढ़ा, पर तभी जैसे किसी ने उसे कचोट लिया। उसने देखा कि लान की हरी घास मिट्टी में समा गई है। रास्ते बद है, केवल डरावनी आंखों वाले मैनिक भशीनगन सभाले, हेल्मेट पहने तैयार खड़े हैं कि कोई आगे बढ़े और वे शूट कर दे। उसने हरी बर्दी वाले होमगाड़ों को भी देखा और देखा कि राइफल थामे पठान लोग जब मन में उठता है, फायर कर देते हैं। वे मानो छड़ी के स्थान पर राइफल का प्रयोग करते हैं और उनके लिए जीवन की पवित्रता बंदूक की गोली की सफलता पर निर्भर करती है। उसे स्वयं जीवन की पवित्रता से अधिक मोह नहीं था। वह खड़हरों के लिए आसू भी नहीं बहाता था। उसने अग्नि की प्रज्वलित लपटों को अपनी आखों से उठते देखा था। उसे तब खाड़ब बन की याद आ गई थी, जिसकी नींव पर इंद्रप्रस्थ सरीखे बैभवशाली और कलामय नगर का निर्माण हुआ था। तो क्या इस महानाश को नींव पर भी किसी गौरव-गरिमामय कलाकृति का निर्माण होगा? इंद्रप्रस्थ की उस कला के कारण महाभारत संभव हुआ, जिसने इस अभागे देश के मटोन्मत्त किंतु जर्जरित शैर्य को सदा के लिए समाप्त कर दिया। क्या आज फिर वही कहानी दोहराई जाने वाली है?

एक दिन उसने अपने बड़े बेटे से कहा था, “‘जिंदगी न जाने क्या-क्या खेल खेती है। वह तो बहुरूपिया है, पर दूसरी दुनिया बनाते हमें देर नहीं लगती। परमात्मा ने मिट्टी इसलिए बनाई है कि हम उसमें से सोना पैदा करें।’”

बेटा बाप का सच्चा उत्तराधिकारी था। उसने परिवार को एक छोटे-से कस्बे में छोड़ा और आप आगे बढ़ गया। वह अपनी उजड़ी हुई दुनिया को फिर से बसा लेना चाहता था, पर तभी अचानक छोटे भाई का तार मिला। लिखा था, “‘पिताजी न जाने कहा चले गए।’”

तार पढ़कर बड़ा भाई अचर्ज से कांप उठा। वह घर लौटा और पिता की खोज करने लगा। उसने मित्रों को लिखा, रेडियो पर समाचार भेजे, अखबारों में विज्ञापन निकलवाए। सब-कुछ किया, पर वह यह नहीं समझ सका कि आखिर वे कहा गए और क्यों गए? वह इसी उधेड़-बुन में था कि एक दिन सवेरे-सवेरे देखा—वे चले आ रहे हैं—शांत निर्द्धृष्ट और निर्मुक्त।

“‘आप कहां चले गए थे?’” प्रथम भावोद्रेक समाप्त होने पर पुत्र ने पूछा।

शात मन से पिता ने उत्तर दिया, “‘लाहौर।’”

“‘लाहौर?’” पुत्र हठात् कांप उठा, “‘आप लाहौर गए थे?’”

“‘हाँ।’”

“‘कैसे?’”

पिता बोले, “‘रेल में बैठकर गया था, रेल में बैठकर आया हूं।’”

“‘पर आप बहां क्यों गए थे?’”

“क्यों गया था?” जैसे उसकी नीद टूटी। उसने अपने-आपको संभालते हुए कहा, “वैसे ही, देखने के लिए चला गया था।”

और आगे की बहस से बचने के लिए वह उठकर चले गए। उसके बाद उन्होंने इस बारे में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इनकार कर दिया। उनके पुत्र ने इस परिवर्तन को देखा, पर न तो वे उन्हें समझा सकते थे, न उन पर क्रोध कर सकते थे, क्योंकि वे दुनिया के दूसरे काम सदा की भाँति करते रहते थे। हाँ, पजाब की बात चलती तो आह भरकर कह देते थे, “गया पंजाब। पंजाब अब कहां है?” पुत्र फिर काम पर लौट गए और वे भी घर की व्यवस्था करने लगे। इसी बीच में वे एक दिन फिर लाहौर चले गए, परंतु इससे पहले कि उनके पुत्र इस बात को जान सके, वे लौट भी आए। पत्नी ने पूछा, “आखिर क्या बात है?”

“कुछ नहीं।”

“कुछ नहीं कैसे? आखिर आप वहां क्यों जाते हैं?”

तब कई क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने धीरे से कहा, “क्यों जाता हूँ, क्योंकि वह मेरा बतन है। मैं वहा पैदा हुआ हूँ। वहां की मिट्टी में मेरी जिदगी का राज छिपा है। वहां की हड्डी में मेरे जीवन की कहानी लिखी हुई है।”

पत्नी की आँखे भर आई, बोली, “पर अब क्या, अब तो सब कुछ गया।”

“हाँ, सब कुछ गया।” उन्होंने कहा, “मैं जानता हूँ, अब कुछ नहीं हो सकता, पर न जाने क्या होता है। उसकी याद आते ही मैं अपने-आपको भूल जाता हूँ और मेरा बतन मिकनातीस की तरह मुझे अपनी ओर खीच लेता है।” उनकी आँखें भर आईं।

करुण स्वर में पत्नी ने कहा, “नहीं, नहीं, आपको अपने को सभालना चाहिए। जो कुछ चला गया उसका दुःख तो जिंदगी भर सालता रहेगा। भाग्य में वही लिखा था, पर अब जान-बूझकर आग में कूदने से क्या लाभ?”

“हाँ, अब तो जो कुछ बचा है उसी को सहेजकर गाड़ी खींचनी ठीक है।” उसने पत्नी से कहा और फिर जी-जान से नए कार्य-क्षेत्र में जुट गया। उसने फिर बकालत का चोंगा पहन लिया। उसका नाम फिर बार एसोसिएशन में गूंजने लगा। उसने अपनी जिदगी को भूलने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और शीघ्र ही वह अपने काम में इतना डूब गया कि देखने वाले दांतों के तले उंगली दबाकर कहने लगे, “इन लोगों में कितना जीवट है। सहस्रों वर्षों में अनेक पीढ़ियों ने अपने को खपाकर जिस दुनिया का निर्माण किया था, वह क्षण-भर में राख का ढेर हो गई, तो बिना आंसू बहाए उसी तरह की दुनिया, ये लोग क्षणों में ही बना देना चाहते हैं।”

उनका अचर्ज ठीक था। तबुओं और कैपों के आसपास, सड़कों के किनारे राह से दूर, भूत-प्रेतों के चिर-परिचित अड्डों में, उजड़े गांवों में, खोले और खादर में, जहां भी मनुष्य की शक्ति कुठित हो चुकी थी, वही ये लोग पहुँच जाते थे। और पादरी

के नास्तिक मित्र की तरह नरक को स्वर्ग में बदल देते थे। उन लोगों ने जैसे कसम खाई थी कि धरती अनंत है, शक्ति असीम है, फिर निराशा कहा रह सकती है?

ठीक उसी समय जब उसका बड़ा पुत्र अपनी नई दुकान का मुहूर्त करने वाला था उसे एक बार फिर छोटे भाई का तार मिला, “पिताजी पांच दिन से लापता है।” पढ़कर वह क्रुद्ध हो उठा और तार के टुकड़े-टुकड़े करके उसने दूर फेंक दिए। और चिनचिनाया, “वे नहीं मानते तो उन्हें अपने किए का फल भोगना चाहिए। वे अवश्य लाहौर गए हैं।”

उसका अनुमान सच था। जिस समय वे इस प्रकार चिंतित हो रहे थे, उसी समय लाहौर के एक दुकानदार ने एक अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को—जो तहमत लगाए, फैज कैप ओढ़े, फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखता हुआ घूम रहा था—पुकारा, “शेख साहब! मुनिए तो। बहुत दिन मे दिखाई दिए, कहा चले गए थे?”

उस अर्ध-विक्षिप्त पुरुष ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया, “मैं अमृतसर चला गया था।”

“क्या?” दुकानदार ने आँखे फाड़कर कहा, “अमृतसर?”

“हा, अमृतसर गया था। अमृतसर मेरा बतन है।”

दुकानदार की आँखे क्रोध से चमक उठी, बोला, “मैं जानता हूँ। अमृतसर मे माढे तीन लाख मुसलमान रहते थे पर आज एक भी नहीं है।”

“हाँ,” उसने कहा, “वहा आज एक भी मुसलमान नहीं है।”

“काफिरों ने सबको भगा दिया, पर हमने भी कसर नहीं छोड़ी। आज लाहौर में एक भी हिंदू या सिख नहीं है और कभी होगा भी नहीं।”

वह हँसा, उसकी आँखे चमकने लगीं। उनमें एक ऐसा रंग भर उठा जो बेरंग था। और वह हँसता चला गया, हँसता चला गया, “बतन, धरती, मोहब्बत सब कितनी छोटी-छोटी बातें हैं! सबसे बड़ा मजहब है, दीन है, खुदा का दीन। जिस धरती पर खुदा का बंदा रहता है, जिस धरती पर खुदा का नाम लिया जाता है, वही मेरा बतन है, वही मेरी धरती है और वही मेरी मोहब्बत है।”

दुकानदार ने धीरे से अपने दूसरे साथी से कहा, “आदमी जब होश खो बैठता है, तो कितनी सच्ची बात कहता है।”

साथी ने जवाब दिया, “जनाब। तब उसकी जबान से खुदा बोलता है।”

“बेशक।” उसने कहा और मुड़कर उस अर्ध-विक्षिप्त से बोला, “शेख साहब! आपको घर मिला?”

“सब मेरे ही घर हैं।”

दुकानदार मुसकराया, “लेकिन, शेख साहब! जरा बैठिए तो, अमृतसर मे किसी ने आपको पहचाना नहीं?”

वह ठहाका मारकर हँसा, “तीन महीने जेल में रहकर लौटा हूँ।”

हा हा उसने आखें कहा  
तुम जीवट के आदमी हा

और तब दुकानदार ने खुश होकर उसे रोटी और कबाब मगाकर दिया। लापरवाही से उन्हे पल्ले मे बाधकर और एक टुकड़े को चबाता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दुकानदार ने कहा, "अजीब आदमी है। किसी दिन लखपति था, आज फाकामस्त है।"

"खुदा अपने बंदो का खूब इम्तहान लेता है।"

"जनत ऐसो को ही मिलती है।"

"जी हा, हिम्मत भी खूब है। जान-बूझकर आग मे जा कूदा।"

"वतन की याद ऐसी ही होती है।" उसके साथी ने, जो दिल्ली का रहने वाला था, कहा, "अब भी जब मुझे दिल्ली की याद आती है, तब दिल भग आता है।"

और वह आगे बढ़ रहा था। माल पर भीड़ बढ़ रही थी। करे भी कम नहीं थी और अंग्रेज, एग्लो-इंडियन तथा ईसाई नारिया पूर्ववत् बाजार कर रही थीं। फिर भी उसे लगा कि वह माल, जो उसने देखी थी, यह नहीं है। शरीर कुछ वैसा ही था, पर उसकी आत्मा झुलस चुकी है। लेकिन यह भी उसकी दृष्टि का दोष था। कम-से-कम वे जो वहा घूम रहे थे, उनका ध्यान आत्मा की ओर नहीं था।

एकाएक वह पीछे मुड़ा। उसे रास्ता पूछने की जरूरत नहीं थी। बैल की तरह उसके पैर डगर को पहचानते थे। आंखे इधर-उधर देख रही थी। पैर अपने रास्ते पर बिना डगमगाए बढ़ रहे थे। और विश्वविद्यालय की आलीशान इमारत एक बार फिर सामने आ रही थी। उसने नुमायश की ओर एक दृष्टि डाली, फिर बुलनर के बुत की तरफ से होकर वह अंदर चला गया। उसे किसी ने नहीं रोका और वह लॉ कालेज के सामने निकल आया। उस समय उसका दिल एक गहरी हूक से टीसने लगा था। कभी वह इस कालेज में पढ़ा करता था। वह कांपा, उसे याद आया, उसने इस कालेज में पढ़ाया भी है। वह फिर कापा। हूक फिर उठी। उसकी आंखे भर आई। उसने मुह फिरा लिया। उसके सामने वह रास्ता था जो उसे दयानंद कालेज ले जा सकता था। एक दिन पजाब विश्वविद्यालय, दयानंद विश्वविद्यालय कहलाता था।

तब एक भीड़ उसके पास से निकल गई। वे प्रायः सभी शरणार्थी थे। बेघर और बेजर, लेकिन उन्हें देखकर उसका दिल पिघला नहीं, कडवा हो उठा। उसने चिल्लाकर उन्हे गालियां देनी चाहीं। तभी पास से जाने वाले दो व्यक्ति उसे देखकर ठिठक गए। एक ने रुककर उसे ध्यान से देखा, दृष्टि मिली, वह सिहर उठा। सर्दी गहरी हो रही थी और कपड़े कम थे। वह तेजी से आगे बढ़ा। वह जल्दी से जल्दी कालेज कैंप मे पहुच जाना चाहता था।

उन दो व्यक्तियों में मेरे एक ने, जिसने उसे पहचाना था, दूसरे से कहा, “मैं इसको जानता हूँ।”

“कौन है?”

“हिंदू।”

साथी अचकचाया, “हिंदू?”

“हा, हिंदू। लाहौर का एक मशहूर वकील” और कहते-कहते उसने ओवरकोट की जेब में से पिस्तौल निकाल ली। वह आगे बढ़ा, उसने कहा, “जरूर यह मुखबिरी करने आया है।”

उसके बाद एक गोली चली। एक हलचल, एक खटपट-सी मची। देखा—एक व्यक्ति चलता-चलता लड़खड़ाया और गिर पड़ा। पुलिस ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, परंतु जो अनेक व्यक्ति उस पर झुक आए थे, उनमें से एक ने उसे पहचाना और कापकर पुकारा, “मिस्टर पुरी! तुम! तुम यहाँ? ऐसे? ”

मिस्टर पुरी ने आँखे खोलीं, उनका मुख श्वेत हो गया था और उस पर मौत की छाया पड़ रही थी। उन्होंने पुकारने वाले को देखा और धीरे से कहा, “हसन.. हसन! ”

आँखें फिर मिच गईं। हसन ने चिल्लाकर सैनिक से कहा, “जल्दी करो। टैक्सी लाओ। मैयो अस्पताल चलना है। अभी... ”

भीड़ बढ़ती आ रही थी। फौज, पुलिस और होमगार्ड सबने उसे धेर लिया। हसन जो उसका साथी था, जिसके साथ वह पढ़ा था, जिसके साथ उसने साथी और प्रतिष्ठित बनकर अनेक मुकदमे लड़े थे, वह अब उसे अचरज से देख रहा था। उसने एक बार झुककर कहा, “तुम यहाँ इस तरह क्यों आए, मिस्टर पुरी?”

मिस्टर पुरी ने एक बार फिर आँखे खोलीं। वे धीमे स्वर मे फुसफुसाए, “मैं यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ से जा ही कहा सकता हूँ? यह मेरा बतन है, हसन। मेरा बतन.. !”

## स्यापा मुका

मैंने समाचार पढ़ लिया है और स्तब्ध रह गया हूँ। कई क्षण लगते हैं उस जड़ता की स्थिति से उबरने में। फिर पढ़ता हूँ उस समाचार को अविश्वास से, पर अदर तो अब तक सब कुछ टूट-बिखर गया है। किरच-किरच हो गया है मेरा संयम और किरच जैसे चुभती हैं।

तभी सुमति उधर से गुजरती है। स्वभाव के अनुसार मुस्कराकर मेरी ओर देखती है और काप उठती है, “क्या हुआ? क्या बात है?”

चुपचाप अखबार उसकी ओर बढ़ा देता हूँ। पढ़ते न पढ़ते एक दर्दनाक ‘हाय’ निकल जाती है उसके मुख से और चीर जाती है हम दोनों के अंतर को। बदहवास सुमति का क्षण-भर पहले का मुस्कराता चेहरा राख हो जाता है और वह इतना ही कह पाती है, “हाय रब्बा, यह क्या हुआ?”

दैनिक ‘जनसत्ता’ के प्रथम पृष्ठ पर पंजाब के आतंकवादियों की गतिविधियों का विवरण दिया हुआ था। उसी के बीच मे बॉक्स में एक किशेष सूचना थी, “परसो आतंकवादियों ने स्कूटर पर आते दो भाइयों में से एक की निर्मम हत्या कर दी। छोटा भाई जो स्कूटर चला रहा था, केशधारी सिख था। पीछे बैठा बड़ा भाई मोना हिंदू था। छोटे भाई मनजीतसिंह के बार-बार अनुनय-विनय करने पर भी जालिमों ने बड़े भाई डा. सर्वजीतसिंह को गोली मार दी और अपनी मोटर साइकिल पर भाग गए। डा. सिंह स्थानीय कालेज मे पंजाबी भाषा के प्राध्यापक और प्रख्यात कथाशिल्पी थे। मनजीतसिंह दिल्ली मे बकालत करते हैं।

गोली लगने पर सर्वजीत नीचे गिर पड़े पर तुरंत मृत्यु नहीं हुई। बदहवास मनजीत यह कहते हुए ‘भइया! मेरे आने तक जिंदा रहना’ डाक्टर को लेने दौड़ा। तभी हत्यारे फिर लौटे और सर्वजीत को जिदा पाकर उन्हे फिर गोली मार दी। भाई के लौटने के पहले ही सर्वजीत ने दम तोड़ दिया..”

फिर तार देने और दिल्ली जाने के लिए प्रबंध करने मे पूरा दिन बीत गया। सकते की हालत में यंत्रवत सब कुछ चलता रहा। गाड़ी मे भी एक भयानक जड़ता ने आवृत्त किए रखा सब कुछ को। बीच-बीच में पुरानी यादे दस्तक दे जातीं मन के द्वार पर, तब नाना रूप चित्र उभर-उभरकर छाती को बहुत गहरे, अदर तक चीर-चीर जाते।

पूरे पच्चीस साल पड़ोसी रहा हूँ उन लोगों का। एक ही मकान मे ऊपर-नीचे

रहते प्रेम, विग्रह और सधि के न जाने कितने खेल खेले हमने। किसके पास है लेखा-जोखा उन सबका, पर एक बात हम सब निश्चिन्त रूप से जानते थे कि हर खेल हमारे सबधों को और गहरा कर गया है।

गृहस्वामी सरदार दंवेद्रसिंह को मैंने नहीं देखा। सुना है उनके बारे में। बेहद ईमानदार, भले और परदुखकान्तर व्यक्ति थे। दुनिया से जल्दी चले गए। भले मानुष जल्दी ही चले जाते हैं। सरदारनी अम्मा—हम उन्हे इसी नाम से पुकारते थे—सदा, जब कभी पुरानी यादों में खोई होती तो अंत में आखों में आँसू भरकर बोल उठती, “इक देवता धरती पर उतरा सी। छेती नाल दुर गया। देवता छेती ही दुर जाते हैं। उणादा असली घर तो ओही होंदा है।”

और वह देवता जब चला गया तो सरदारनी अम्मा रह गई थीं अपने पाच बच्चों के साथ—चार बेटे, एक बेटी। सबसे बड़ा सर्वजीत तेरह वर्ष का था और सबसे छोटा मनजीत तीन वर्ष का। पूजी के नाम पर बस, ईमानदारी और मेहनतकशी ही उन्हे विरासत में मिली थी। मैं साक्षी हूँ उस अनथक, अनवरत मध्यर्ष का जो सरदारनी अम्मा ने अपनी सतान को देश का मच्चा नागरिक बनाने के लिए किया था। दिन-भर कपड़े सी-सीकर घर चलाया उन्होंने और कभी किसी को किसी बात के लिए तरसने नहीं दिया।

सरदारनी अम्मा हिंदू परिवार में जन्मी थीं पर पति के घर में सिख परपरा का एक समर्पिता की तरह पालन करती थीं। वह उनके रक्त में रच-बस गई थी—ऐसे ही जैसे फूल में सुरंध। उनके दो बेटे केशधारी थे, दो मोने; पर हर शुभ अवसर पर वे गुरु ग्रथ साहब का पाठ करती थीं। उन दिनों घर में वह गहमा-गहमी मचती कि देवता भी धरती पर उतर आते। तीन दिन धूप-धूनी, झांझ-मंजीरों के साथ अखंड पाठ चलता। सबेरे ही सिर पर रुमाल डालकर मैं नास्तिक भी ग्रथ साहब के आगे मत्था टेकता, भेंट चढ़ाता, कुछ देर पाठ सुनता और अंत में कडाह प्रसाद लेकर लौटता। “आसा दी बार” के समय सरदारनी अम्मा बड़ी तेजी से जीना चढ़कर आती और उलाहना देती, “ओए भइए (मुझे वह सदा भइए कहकर पुकारती रही हैं) ओत्थे आसा दी बार होंदी पयी और तू एत्थे बैठा। छेती नाल आ जा, सब तेरी राह देखते।”

मैं तुरत भीगी बिल्ली की तरह पीछे-पीछे जीना उतर जाता और पहले से ही वहा बैठी सुमति मेरी ओर ढंखकर व्यग्य से मुसकरा देती। वह खाटी सिख परिवार की बेटी है। हम दोनों एक साथ पढ़ते थे। वही प्रेम हुआ। कोर्ट मैरिज की थी हमने, पर सुमति जब-नब शरारत करने से बाज न आती। सरदारनी अम्मा से मेरी शिकायत करती रहती, “देखो अम्माजी! इन्हें समझाओ न। ईश्वर, धर्म-कर्म, किसी में जरा भी आस्था नहीं इनकी।”

सरदारनी अम्मा उलटा उसे ही उलाहना देती, “अगे, तू भी कैसी सिक्खनी है, एक मर्द दा मन नहीं बदल सकी।”

सुमति बिना सोचे-समझे बोल उठती, “बड़े आए मर्द। पहली ही मुलाकात मे चारों खाने चित्त कर दिया था।”

लेकिन दूसरे क्षण जैसे ही अपने शब्दों का अर्थ समझती तो मुह मे कपड़ा ठूसकर भाग खड़ी होती। तब सारा चातावरण मुक्त अद्वाहास से गूंज-गूंज उठता।

वही गूंज आज हिचकोल खाते इस डिब्बे मे भेरी छाती को चीरे दे रही है जैसे पेचकस पेच को अंदर और अदर ऐंठता चला जाता है। कैसे बन जाता है सब कुछ अतीत! जिसको हमने जिया वही स्मृति का रूप कैसे ले लेता है

उनका पडोसी बने अभी साल ही हुआ होगा कि देखता हूँ कभी-कभी मनजीत मेरे पोस्ट बॉक्स मे से डाक निकाल लेता है और चिर्दी-चिर्दी करके इधर-उधर बिखेर देता है।

सुमति बोली, “सरदारनी अम्मा से मैने कहा था। वे नाराज हो गई। बोली तक नहीं सकेरे से। और मनजीत तबसे खिल्ला रहा है, ‘फाड़ूगा और फाड़ूगा, बकसा तोड़ दूगा।’ ”

मुझे भी यह सब अच्छा नहीं लगा। बोला, “यह तो बुरी बात है। कुछ करना होगा।”

पर मैं नीचे जाकर नाटक नहीं करना चाहता था। चाहता था, किसी समय अम्माजी से बात करूँ लेकिन देखता हूँ कि सरदारनी अम्मा तभी ऊपर चली आ रही है। बेहट गभीर स्वर में कहती हैं, “बहू! बच्चे तो राम मोर बंदर होन्दे हैं। जितणा टालोगे उन्हा ही हौर अड़नगे। तुम ताला पा दो बक्से इच। इणादा क्या है। मैं तो बहुत दालिया पर रुड़ पुड़ जागिए एक नह सुणदे।”

फिर उनका गला भर आता और मैं व्यस्त होकर बोल उठता, “अरे अम्माजी, आप भी किस बात के लिए परेशान हो रही हैं। ये बटर शैतानी नहीं करेंगे तो क्या सुमति और मैं करेंगे। मैं समझा दूंगा मनजीते को .।”

तभी मेरी नजर मनजीत पर पड़ती है। वह न जाने कब तक वहा खड़ा हो गया है। अपना नाम सुनकर बोल उठता है, “भाई माहब! मैंनू यह सवाल नहीं आदा। समझा दीजिए।”

“ओय, तू मेरी डाक क्यूँ फाड़दा है?”

“अब नहीं फाड़गा।” मनजीत ऐसी मासूमियत से कहता है कि हम सब खिलखिला पड़ते हैं। हरे छोटे-मोटे झगड़े के बाद इस तरह खिलखिलाना मन को कैसा यवित्र कर जाता है। बाद से विवाद की ओर न जाकर संवाद की ओर लौट पड़ते हैं हम।

यही मनजीत एक दिन आयु की चिता किए बिना मेरा सबसे प्यारा दोस्त बना। जब मैने अवकाश प्राप्तकर इलाहाबाद में बसने का निश्चय किया तो सबसे ज्यादा वही परेशान हुआ था। बराबर चिट्ठी लिखता। बराबर मिलने आता। अभी दस दिन

पहले ही तो आया था और कह गया था, “ओय भाभिए। लड़की मैंने छूँढ़ ली है, पर जब तक तू हाँ नहीं करेगी, मैं शादी नहीं करूँगा।”

सुमति हँसी थी, “तब जन्म-भर बैठे रहना कुंआरे।”

“मैं तो बैठा ही रहूँगा, पर दर्द तुम्हें ही होगा..”

मैं तेजी से गरदन को झटका देता हूँ पर दृश्य तो बवंडर की तरह स्मृति के छार से होकर मन के पटल पर बिखर जाते हैं। सरदारनी अम्मा सवेरे-सवेरे कोयलों की अगीठी जलातीं तो हमारा कमरा धुएं से भर जाता और तब बहुत देर तक उसकी कडवाहट दिलोदिमाग को डनेजित किए रहती। एक दिन साहस करके सुमति ने कहा, “अम्माजी! आज तो धुआं कुछ बहुत ही उठ रहा है।”

अम्माजी बोलीं, “वहू! मैं क्या नहीं जानदी पर करां की। साडे घर दा कडवा धुआं तो ऊपर ही जांदा हैं जीवे तुहाङ्कु घर दा गंदा पानी थल्ले ही आवगा। उणादा सुभाव ऐ ही जो ठहरा। असी की कर सकणे।”

सुमति क्या जवाब दे लेकिन उनकी बेटी सुरिंदरकौर कभी-कभी बड़ा सटीक जवाब देती। पढ़ा होगा किसी किताब में, पानी का स्वभाव नीचे जाना, धुएं का स्वभाव ऊपर जाना और आदमी का स्वभाव लड़ना।

मुझे खूब याद है, सरदारनी अम्मा एक बार तो लगभग चीख उठी थी, “ओय रुड़ पुड़ जाणिए। कित्थो पढ़ा सी तुने यह सब। आदमी दा स्वभाव लड़ना नहीं, प्यार करना है।”

सुरिंदर बोली, “ए बी मैनू पता है। लड़न दे बाद ही तो प्यार किया जांदा है।”

सरदारनी अम्मा अब हँसे मो हँसे, “ओय कुडिए, तेरे पेटिच तो बड़ी लंबी दाढ़ी है..”

कितनी-कितनी प्यारी यादें, पर कितनी पीड़ा देने वाली! क्या सोच रही होगी सरदारनी अम्मा आज? कैसा लग रहा होगा उनका वह भरा-भरा चेहरा।

कैसे बन जाता है हैवान भला-चंगा इनसान। कैसे ढहाने लगता है। कहर बेगुनाहों पर? कैसा लगा होगा मनजीत को..

तीर की तरह एक हूँक उठती है और मेरी चेतना चिथड़े-चिथड़े होकर बिखर जाती है। फिर मुझे कुछ पता नहीं रहता कि कब गाजियाबाद आया और कब सुमति ने मुझसे कहा, “एक प्याला चाय ले लो।”

मैं आंखें खोलता हूँ। सुमति की सूजी हुई लाल-लाल आंखे मुझ पर झूकी हुई हैं। जानता हूँ, वह भी रात-भर नहीं सोई। मैं सप्रश्न उसकी ओर देखता हूँ। वह समझ जाती है। कहती है, “मैं भी ले रही हूँ उठो।”

यंत्रवत् हम चाय का एक-एक घूंट भरते रहते हैं। हर घूंट के साथ कुछ चेहरे आखों मे तैर जाते हैं कि अचानक मेरी दृष्टि समाचार-पत्र पर पड़ती है जो मेरे सामने

का साट पर एक सहयोगी ने खरादा है म उस उठा लेता हू मुख्यपृष्ठ पर वही फजाब के आतकबादियों के बारे मे रिपोर्ट है बाक्स में भी एक समाचार है धार्मिक उन्माद और पागलपन की भी एक सीमा होती है, अभा चार दिन पहले अमृतसर में बेगुनाह डा सर्वजीतसिंह की हत्या इसलिए कर दी गई थी कि वे केशधारी नहीं थे। कल उनके छोटे भाई मनजीतसिंह की हत्या हरियाणा में करनाल के पास इसलिए कर दी गई है कि वे केशधारी थे ॥

चाय का पात्र हाथ से छूट जाता है। मैं काल और दिक् से निरपेक्ष शून्य में डूब जाता हूँ। सुमति की लाल-लाल डरावनी आखे जैसे फट जाती है—सीमाहीन विस्तार मे

पता नहीं कैसे हुआ यह सब। कैसे हम उस घर की इयोढ़ी तक पहुँचे। मौत का गहरा सन्नाटा व्याप्त था वहाँ। एक शब्दहीन अंतर्दृदन मे लिपटा था सब कुछ। कौन है वह सामने शोकाकुल महिलाओं से घिरी खंभे से टिक्की एक पत्थर की मूरत, बाल बिखरे, आखें मुदी, चेहरा भावशून्य, एक जिंदा लाश...

सुमति बदहवास ढौड़ती है और ब्रह्मांड को भेदता एक शब्द 'अम्माजी' निकलता है उसके मुख से। फिर वहीं उस मूरत के पास छेर हो जाता है। आपाद-मस्तक सिहरता-कांपता मैं पूरी शक्ति लगाकर अपने को समेट रहा हूँ और उस मूरत के पास सरकर रहा हूँ कि उसमें जुंबिश होती है, धीरे-धीरे पलकें उघड़ती हैं, पुतलियों मे हरकत आती है और वे मुझ पर टिक जाती हैं। कुछ टटोलती-सी। धुंध के पार दहकते दो शोले, पूरा कातावरण धधक रहा है उनमे..

मुझमे साहस नहीं है उस ताप को सहने का। ताज्जुब यही है कि अभी जिंदा कैसे हूँ मैं कि उसी क्षण दूर क्षितिज के उस पार से एक आवाज उभरती है, जैसे पिघलता शीशा उंडेल दिया हो किसी ने मेरे कानों मे "आ गया तू भइये। देख लिया, वाहे गुरु ने राम नूँ कतल कर दिता, राम ने वाह गुरु नूँ। दोनों नस गए। स्यापा मुका..."

एक क्षण के लिए एक बेआवाज, बेलौस हँसी उभरी उस पत्थर चेहरे पर और फिर सब कुछ पूर्ववत् हो गया।

इमका जवाब दिया रमेश के  
रंगा और जानने का महत्व ही था।  
“पर आपका बेटा क्या...?”  
बृद्ध के नयन फिर चिपचिपा  
डरकर कहीं भाग गया।”

“जी हा, हिंदू हिंदू को नहीं

“अजी कुछ न पूछो, आज-

“आज की बात नहीं है।

“हें क्यों नहीं?”

रमेश के मिथ्र हँस पड़े,

“मुसलमाननुपा सूरतें दिखाई देती हैं—

और यह कहकर वे और

“नहीं बचा है तो अच्छा है—

नीचे बैठे हुए अधेड़ व्यक्ति का

अता-पता लगा?”

“जी हां, सुना है, वह क-

उभसे पता लगा है कि वह भी क-

रमेश के पीछे जो व्यक्ति का

आती। स्कूल से भागकर लड़का

बैठे थे, वे एकटक बृद्ध की ओर देख रहे

गया।”

रमेश सबकी बाते सुन

बार-बार बृद्ध सज्जन पर जा उलझा

इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने

नहीं हो चले हों, फिर बैठते-बैठते कहा,

अच्छे करना और देख, सीधा

खिलता हुआ स्कूल गया होगा।

होगी, उसने वह दर्दनाक खबर

रमेश कापा। उसने गरद्द

को देखा—वे उसी तरह कह

थी। उसे वे लोग भगाकर ले

“आपने अखबारों में

“जी हा, अखबारों में

## प्रथाह

खींची। तभी सहसा एक बृद्ध व्यक्ति ने  
आ जाने दीजिए।”

व दिया। एक साथ अनेक बृद्ध आंखे उस

नहीं तो विश्वामित्र या दुर्वासा की तरह वे

के रमेश के मित्र ने चुपचाप दरवाजा खोल

धुस आए क्योंकि अनेक नवयुवकों ने

लगी जैसे कोई मरघट में हँस पड़

आंखों में ऐसा कुछ है कि न देखते बनता

इसे बढ़ होती है कि हरहराकर फिर खुल

होती, ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आरी

“नहीं बचा है तो अच्छा है—

होती, ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आरी

अता-पता लगा?”

दूसरे लोगों का ध्यान उस बृद्ध की ओर

आद में व्यस्त थे, धीरे-धीरे फुसफुसाते और

रमेश के पीछे जो व्यक्ति

य और करुण, पाखाने के पास खड़े थे।

आती। स्कूल से भागकर लड़का

बैठे थे, वे एकटक बृद्ध की ओर देख रहे

गया।”

ए यहां बैठ जाएँ।”

रमेश सबकी बाते सुन

बार-बार बृद्ध सज्जन पर जा उलझा

इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने

नहीं हो चले हों, फिर बैठते-बैठते कहा,

अच्छे करना और देख, सीधा

खिलता हुआ स्कूल गया होगा।

होंठ हिले, पलके मुंद-सी गई। खुलीं तो

उस व्यक्ति के पास एक युवक बैठा था।

थी। उसे वे लोग भगाकर ले

“आपने अखबारों में

“जी हा, अखबारों में

तब तक एक और अधेड़ व्यक्ति का ध्यान उधर खिच आया। वे बोले “शायद आपका कोई रिश्तेदार खो गया है? आजकल गुमशुदगी की घटनाएं बहुत हो रही हैं।”

“शायद वह आपका बेटा है?” तीसरे आदमी ने कहा।

रमेश ने एक बार उन आदमियों को देखा, फिर उस बृद्ध को। फिर उन आदमियों को देखा और फिर उस बृद्ध को कि बृद्ध बोले, “हाँ बेटा। तुम ठीक कहते हो। मेरा बेटा ही खो गया है।”

“मैंने कहा था न,” अधेड़ सज्जन बोले, “वह तो आपकी सूरत ही कह रही है। बेटे का दर्द ही अलग होता है।”

“क्यों जी, दिल्ली में था?”

“जी हाँ।”

“किता बड़ा था जी?”

“सोलह वर्ष का था।”

डिब्बे की एकमात्र स्त्री ने अपने बच्चे को गोद में अदर को खीचकर धोती का पत्तला उढ़ा दिया। ऊपर की बर्थ पर लेटे हुए महाराष्ट्रीय सज्जन ने अब पूछा, “क्यों जी, कैसे चला गया था?”

“जी, स्कूल गया था।”

“और फिर लौटकर नहीं आया। मेरे एक दोस्त हैं, उनका लड़का भी स्कूल गया था, आज तक नहीं लौटा।”

सुनकर बृद्ध कुछ अस्पष्ट स्वर में बुदबुदाएं, पर प्रश्नकर्ता ने फिर प्रश्न किया, “कितने दिन हो गए जी?”

“यही दो महीने से कुछ ज्यादा।”

“दो महीने? तब तो दिल्ली में बड़ी मार-काट मची हुई थी।”

बृद्ध ने गहरी सांस खींची, कहा, “तभी की बात है। स्कूल में इस्तहान हो रहे थे। अचानक कुछ लोगों ने हमला कर दिया।”

“मुसलमानों ने किया होगा।” महाराष्ट्रीय सज्जन बोल उठे।

“जी नहीं।”

“तो?”

“तो आप समझ लीजिए। उन लोगों ने एक जाति के सभी लड़कों को मार डाला..।”

“सबको?”

“जी हाँ।”

अबाक्-अपलक यात्रियों ने एक-दूसरे को देखा। सबके मन भय और बेदना के धुए से घुट रहे थे। एक व्यक्ति ने पूछा, “कितने होंगे जी?”

इसका जवाब दिया रमेश के मित्र ने, “किनने थे, यह कभी कोई नहीं जान सकेगा और जानने का महत्व ही कितना है?”

“पर आपका बेटा क्या? ” ट्रंक पर बैठे हुए युवक ने मकुचाते हुए पूछा।

बृद्ध के नयन फिर चिपचिपा आए थे। बोझिल बाणी में कहा, “कहते हैं, वह डरकर कहीं भाग गया।”

“जी हाँ, हिंदू हिंदू को नहीं मार सकता।”

“अजी कुछ न पूछो, अजकल तो...”

“आज की बात नहीं है। आज मुसलमान हैं कहाँ? ”

“हैं क्यों नहीं? ”

रमेश के मित्र हँस पडे, ‘मुसलमान अब हिंदुस्तान में नहीं हैं, मेरे दोस्त। जो मुसलमाननुमा सूरतें दिखाई देती हैं, वे उनकी लाशे हैं, चलती-फिरती लाशें।’

और यह कहकर वे और भी जोर से हँसे। वह हँसी डिब्बेबालों को बहुत बुरी लगी जैसे कोई मरधट में हँस पड़ा हो। महाराष्ट्रीय सज्जन ने कहा, “आप पाकिस्तान की बात नहीं सोचते? वहाँ तो एक भी हिंदू नहीं बचा है।”

“नहीं बचा है तो अच्छा है, तड़पना तो नहीं पड़ेगा।”

नीचे बैठे हुए अधेड व्यक्ति ने उधर ध्यान न देकर फिर पूछा, “क्यों जी, कुछ अता-पता लगा? ”

“जी हाँ, सुना है, वह कराची चला गया है। वहाँ से जो लोग बर्बई आए हैं, उनसे पता लगा है कि वह भी शायद बर्बई आ गया है। वही जा रहा हूँ।”

रमेश के पीछे जो व्यक्ति बैठे थे, उन्होंने धीरे से कहा, “बात समझ में नहीं आती। स्कूल से भागकर लड़का घर क्यों नहीं आया? कराची क्यों गया और कैसे गया? ”

रमेश सबकी ओर सुन रहा था, परतु बोलता नहीं था, क्योंकि उसकी दृष्टि बार-बार बृद्ध सज्जन पर जा अटकती थी। वह सोचने लगता था—उस दिन सवेरे जब इनका बेटा स्कूल में परीक्षा देने गया होगा, तो क्या इन्होंने सोचा होगा कि वह अब नहीं लौटेगा? उसकी माँ ने प्यार से उसे दही और लड्डू खिलाया होगा, “बेटा। परचे अच्छे करना और देख, सीधा घर आना। आजकल बुरे दिन हैं।” और फिर बेटा खिलता हुआ स्कूल गया होगा और फिर सध्या को जब वह बेटे की राह देख रही होगी उसने वह दर्दनाक खबर सुनी होगी। तब...तब ..

रमेश कांपा। उसने गरदन को झटका दिया। उसके नयन भर आए। उसने बृद्ध को देखा—वे उसी तरह कह रहे थे, “उसे घूमने का बहुत शौक था। उमर भी चंचल थी। उसे वे लोग भगाकर ले गए।”

“आपने अखबारों में निकलवाया है? ”

“जी हाँ, अखबारों में भी निकलवाया है, रेडियो पर भी एलान हुआ है, पर आप

जानते हैं, वहा हमारे अखबार नहीं जाते, न कोई रेडियो सुनता है।"

रमेश का मस्तिष्क धूम-फिरकर फिर वही आ गया। खबर लाने वाले ने कहा होगा, "स्कूल में कल्लोआम भच गया। सब बच्चे मार डाले गए।" तब हतभागिनी-सी उसकी मां के हृदय से एक तेज चीख निकली होगी और अपने बच्चे को देखने के लिए आतुर वह पागल-सी बाहर भागी होगी। किसी ने कहा होगा, "ठहरो बीबी। वहा खतरा है। अभी इतजार करो।" और उसने इंतजार किया होगा। शायद अब तक कर रही है। अभी भी वह अपने दरवाजे से बाहर झाँककर, उस चिरपरिचित मार्ग को देखती होगी, जिस पर उसका बेटा आता-जाता होगा...

रमेश के लिए सोचना असभव-सा हो गया। वह दिल्ली में रहता था। उसने उम घटना की चर्चा सुनी थी, पर इससे अधिक नहीं जितनी वह आज सुन रहा था। तभी सहसा उसके मित्र ने कहा, "सामान उठा लो, रमेश। हम यही उतरेंगे।"

गाड़ी धीमी पड़ने लगी और शोर बढ़ चला। रमेश ने ऊपर से होल्डाल उतार लिया। फिर उन वृद्ध को देखा—उस धकापेल में वे उसी तरह शून्य में ताकते हुए बैठे थे। वह नीचे उतर गया। उतर गया तो जैसे होश आया, परंतु वृद्ध की झुरिया और चिपचिपाहट से पूर्ण दृष्टि वह नहीं भुला सका। वे उमड़-उमड़कर विचारों का तुफान पैदा करती ही रही। कई दिन बाद जब लौटकर दिल्ली आना हुआ, तब भी कभी-कभी बिजली की तरह वह मूर्ति उसके नेत्रों में कौंध जाती थी। इन्हीं दिनों अचानक एक पुराने मित्र मिल गए। कई बार उनका निमन्त्रण आ चुका था। बास्तव में उनकी पत्नी का बड़ा आग्रह था। रमेश उन्हें भाभी कहता था। वे कार में बिठाकर उसे घर पर ले गई। चाय का बक्त था, बिना पुकारे नैकर मेज पर सामान जुटा गया और भाभी चाय तैयार करने लगी। मित्र किसी जमाने में कालोज के प्रोफेसर थे। कायेस आदोलन में बहुत दिन जेल काटी। अब शरणार्थी विभाग में कोई बड़ा-सा पद उन्हें मिला था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि चर्चा 'सब रास्ते राम को जाते हैं' वाली कहावत के अनुसार हर कहीं होकर शरणार्थियों की समस्या पर आ अटकती थी। बातों-बातों में रमेश उन वृद्ध की चर्चा कर बैठा। अचरज से मित्र ने मुस्कराकर कहा, "मैं उन्हें जानता हूँ।"

रमेश ने पूछा, "क्या वे आपके पास आए थे?"

"कई बार आए हैं। उनको पूरा यकीन है कि उनका लड़का कहीं न कहीं जिंदा है।"

"पर क्या यह सच हो सकता है?"

"असंभव। वह उसी दिन मारा गया होगा।"

"पर वह तो हिंदू था।"

मित्र मुस्कराए, "मौत जाति नहीं पूछती। और वह तो सामूहिक वध था। बहुत मुमकिन है, हत्यारे उसे न पहचान सके हो।"

“शायद।”

“और नहीं तो वह कहा जाता?”

“पर उसकी लाश।”

बात काटकर मित्र ने कहा, “ऐसे मौको पर जो कुछ होता है वह क्या बताना होगा? कौन कह सकता है, कितनी लाशे उन्होंने जला या दबा नहीं दी होगी? तब तो गिनती कम करने का प्रश्न होता है।”

भाभी ने प्याला ढक्क से मेज पर रख दिया और करुणा से उद्देलित होकर अग्रेजी मे कहा, “आदभी कितना बर्बर हो गया है।”

मित्र हँसे, बोले, “आदभी वास्तव में बर्बर ही है। कौन कह सकता है, मैं कब तुम्हारा गला नहीं घोट दूँगा। कम-से-कम मुझे तो इसमें कुछ असंभव नहीं लगता। और फिर इधर जो कुछ हम देख चुके हैं, वह तो संभावना को प्रमाणित करने वाला है। हा कुछ लोग मानते हैं कि एक दिन मनुष्य शारीरिक बल की तरह बौद्धिक बल का परित्याग करके सम्मिलित जीवन को प्राप्त करेगा। पर जब तक बुद्धि है, बर्बरता से छूटने का कोई उपाय नहीं है।”

रमेश ने चाय का घूंट भरा और फिर कहा, “भविष्य में क्या होगा, इस पर विचार करने से इतना लाभ नहीं है, जितना वर्तमान पर। मैं कहता हूँ, वे क्यों नहीं मान लेते कि उनका लड़का अब दुनिया मे नहीं रहा। इस दुःख को स्वीकार किए बिना क्या उन्हें शांति मिलेगी?”

“दुःख तो वही है,” मित्र बोले, “उन्होंने इस दुःख को स्वीकार नहीं किया है। विधि के इस दान का तिरस्कार ही उन्हें साल रहा है।”

भाभी ने पूछा, “तुम इसे विधि का दान कहते हो?”

“कोई चिंता नहीं,” वे बोले, “तुम इसे व्यक्ति का दान कह सकती हो।”

रमेश ने सिगरेट जलाई और दियासलाई को बुझाते हुए कहा, “तो तुम उन्हें समझाते क्यों नहीं?”

“समझाना चाहता हूँ,” मित्र ने धुए के उठते हुए बादलों के उस पार ध्यान से देखा, “पर उनकी आँखें देखकर कलेजा मुह को आगे लगाता है। कुछ कहने को मन नहीं करता। बुद्धि बहुतेरा जोर लगाती है, पर उनकी दृष्टि ‘रमेश, मैं तुमसे क्या कहूँ, सब विचारों को पाश-पाश कर देती है। तब मैं सोचता हूँ, आज यदि मुझमें नारद की शक्ति होती तो अपने तपोबल से, राजा के बेटे की तरह, उनके बेटे की आत्मा को बुलाकर दिखाता कि जिसे वे अपना बेटा समझे थे, वह उनका दुश्मन था। तभी तो बुढ़ापे मे तड़पाकर चला गया।’”

रमेश ने उनका प्रतिवाद करना चाहा, “पर तभी दखा, कोई अदर चला आ रहा है लेकिन यह देखकर कि साहब अकेले नहीं है, वह ठिठक गया। न जाने क्या हुआ, दूसरे ही क्षण रमेश चौककर उठा, “अरे, ये तो वही बृद्ध हैं।”

मित्र मुड़े, “कौन?” और फिर खड़े होकर कहा, “आइए, चले आइए। ये मेरे मित्र हैं।”

आज उनके वेश में इतना ही परिवर्तन था कि हजामत बढ़ गई थी और उसने उनके मुख की भयकरता को और भी गहरा कर दिया था। वे बैठ गए तो मित्र ने कहा “चाय पिएगे?”

एक फीकी-सी मुस्कराहट झुरियो में उठी और वहीं खो भी गई, बोले, “चाय पिऊगा, पर पहले मेरी बात सुन लो। मुझे निश्चित रूप में पता लगा है कि किशोर मुलतान कैंप में है।”

“जी, मुलतान?” मित्र विस्मित-चकित बोल उठे।

“जी हा, मुलतान कैंप में। बबई में एक सज्जन मिल गए थे। वे सिंध से आए थे। मैंने उन्हें हुलिया बताया। ठीक उसी तरह का एक लड़का उन्होंने मुलतान कैंप में देखा था। वही रंग, वही आंखें, वही कपड़े। नीला निकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुशबं और काला जूता। माथे पर दाहिनी ओर चोट का निशान भी उन्होंने बताया। अग्रेजी बोलना पसंद करता है और शरारती है।”

रमेश ने देखा, कहते-कहते वृद्ध की आंखें ऐसे चमकी जैसे घोर अधकार में रह-रहकर जुगनू चमक उठता है। मित्र ने साहस करके पूछा, “पर वह मुलतान कैसे जा सकता है?”

उन्होंने दृढ़ता से कहा, “वह मुझसे अकसर मुलतान जाने की बात कहा करता था। सच तो यह है कि उसे पंजाब से बहुत प्यार था। जान पड़ता है, वह जान बचाने के लिए स्कूल से भाग गया। स्टेशन पास था। कोई गाड़ी जाती होगी, उसी में बैठकर चला गया।”

“हो सकता है।”

“जी हाँ, यहीं हुआ है।”

“तो फिर?”

“तो आप कृपा करके मुलतान कैंप के इंचार्ज को लिख दें। जरा अच्छी तरह लिख दे। आपकी दया से उसका पता लग गया तो—”

आसू न जाने कहाँ रुके थे। झुरियो में अटक-अटककर बहने लगे। रुधे गले से उन्होंने अपनी बात जारी रखी, “आपने मुझ पर बहुत मेहरबानियां की हैं। मैं उन्हें नहीं भुला सकता। एक बार और कोशिश कर देखिए। उमकी मा को पूरा यकीन है कि वह मुलतान कैंप में है।”

और फिर सदा की तरह जेब से एक चिट्ठी निकालकर उन्होंने कहा, “उसकी मा ने यह चिट्ठी लिखी है। आप भी कैंप इंचार्ज को लिख दें कि वह उसे समझा दे कि बेटा, तुम्हारी मा तुम्हारी याद में तड़प रही है। तुम इसी वक्त चले जाओ, नहीं तो हम दोनों मर जाएगे।”

एक बार फिर कुर्ते की जेब में हाथ डाला। कई नोट निकाले और बोले “किशोर की माँ ने कहा है, पैसों की चिता न करे। जो कुछ है, उसी का है।”

मित्र की अवस्था बड़ी विपन्न थी। वे एकटक अपने नीचे धरती को देख रहे थे वह न हिलती थी, न डुलती थी। नोटों की बात सुनकर उन्होंने दृष्टि उठाई और कहा, “इन्हे आप रखिए। पता लगने पर यदि जरूरत हुई तो मैं फिर मगवा लूगा। और देखिए, आप अपना ख्याल कीजिए। क्या हालत हो गई है। आपको अब समझ लेना चाहिए ॥”

बात काटकर उन्होंने कहा, “मैं नब समझता हूँ। न समझता तो क्या अब तक जीता रहता। पर किशोर की माँ की बात अलबत्ता है। खाट से लग गई है। हर बक्त दरवाजे पर आखे गड़ाए बैठे रहती है। कोई बक्त-बेवक्त दरवाजा खटखटाता है तो चिल्लाकर कहती है, ‘देखो तो कौन है? शायद किशोर है।’ ॥”

फिर जैसे वे कहीं खो गए। जैसे कठ भावों के उन्मेष में जकड़ गया। कई क्षण शून्य में ताका किए और सन्नाटा गहर-गहरकर सबके दिलों को कचोटता रहा। उन्होंने ही कहा, “आप मेरी चिंता न करें। आप बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे। बस, आप उन्हें लिख दें। बहुत-बहुत विनती करके लिख दें कि अपना काम है। समझें, वे अपना ही बेटा ढूँढ़ रहे हैं।”

और अपनी डबडबाई आंखों को कोहनी से पोंछकर वे उठे, “तो मैं जाऊँ? आप लिखेंगे?”

“जरूर लिखूँगा और हो सका तो मैं आपके जाने का प्रबंध भी कर दूँगा।”

वे मुड़े। श्वास फूलने लगी, जैसे कोई सपदा मिली हो, कहा, “सच?”

“देखिए, कोशिश करूँगा। चाय पीजिए।”

रमेश एकटक उनके मुख को देख रहा था। उन झुरियों में शिशु की सरलता उमड़ रही थी और वे दयनीय तथा डरावनी आंखे एक मधुर प्रकाश से भर उठी थी, जैसे वे किसी सुहावने स्पर्श का अनुभव कर रहे हों। उन्होंने कहा, “पीऊँगा, एक दिन आप सब लोगों के साथ अपने घर बैठकर पीऊँगा। तब तक किशोर भी आ जाएगा। वह दिन अब दूर नहीं है। मैं जानता हूँ, वह मुलतान कैप में है, क्योंकि जब घर मे आपके पास आने को चला था, तो मैंने रास्ते में एक मुरदा देखा था।”

अंतिम बात उन्होंने बड़े धीरे से कही और कहकर शिशु की तरह हँस पड़े। रमेश से देखा नहीं गया। उसने मुँह फेर लिया और वे जिस तरह आए थे उसी तरह चले गए। चाय ठंडी हो गई थी और साथ ही उन दोनों के दिल भी। भाभी भी अदर चली गई थीं। कुछ देर उन्होंने से बाते करके रमेश लौट आया। मन उसका और भी अशात हो गया। उसने सोचा—यह कैसा अप्राकृतिक जीवन है। इस छलना का अत होना ही चाहिए, होना ही चाहिए।

बुद्धि जब सोचती है तो उसके पास रास्तों की कमी नहीं रहती। रमेश को

आखर वह राह दखाई दा एक दिन बड़े तड़के उठकर उसने बृद्ध के घर पर जाने का निश्चय कर डाला जो कुछ हुआ वह बुरा था पर उस बुरपन का सपदा का तरह सहेजकर सखना तो निस जागरात ही नहीं, देश के साथ विश्वासघात भी है, उन्हें साफ-साफ कहना होगा ‘तुम्हारा बेटा मग चुका है। और केवल तुम्हारा बेटा ही नहीं मरा है, असंख्य मां-बापों ने अपनी गोदी के लाल गंवाकर आजादी पाई है। मा के बधन काटने के लिए संतान को प्राण होमने ही पड़ते हैं। मौत आजादी का पारितोषिक है। इसके लिए तुम्हे गर्वित होना चाहिए।’

बहुत ढूँढ़ने पर उसे घर मिला। एक पचायती मकान मे उनका कमरा था। कुछ कपन-सा हुआ। वैसे सर्दी के दिन थे। ऊपर तक कपड़े लाद लेने पर भी वायु त्वचा का संसर्ग प्राप्त कर लेती थी, इसलिए मफलर को जरा ठीक करके दरवाजे पर दस्तक दी, तो पता लगा वह खुला पड़ा है, गिरते-गिरते बचा। तनिक-सा खोलकर झाँकना चाहा कि तभी सुना, कोई बोल रहा है। ठिठककर सुनने लगा। स्वर नारी का था। लगा, थका होकर भी उसमें प्रार्थना का आवेग है। मुना, “अच्छा, अब उठो भी। क्या दफ्तर नहीं जाओगे?”

जवाब मिला, “नहीं।”

“क्यों?”

“क्योंकि यह सब झूठ है।”

“सुनो तो।”

“कुछ नहीं, किशोर की मा। अब कब तक हम इस भुलावे मे पड़े रहेगे? कब तक झूठ-मूठ मन को बहलाते रहेगे। किशोर अब नहीं लौटेगा। वह वहां पहुंच चुका है जहां से कोई नहीं लौटता और जहां..”

आगे के शब्द कठावरोध में खो गए। रुदन से फूटी हुई उसास ही रमेश सुन सका, “तुम तो यूं ही दुखी होते हो, जी। भगवान् की माया कौन जानता है। हमारे गाव के गोविंद पंडित का बेटा सात साल में लौटा था। और सुनो तो, मैंने आज सवेरे एक सपना देखा है कि किशोर तुम्हारे पीछे-पीछे दरवाजा खोलकर अंदर आया है। उसने नीली निकर, सफेद कमीज, नीली धारी की जुराबे और काला जूता पहना है। कह रहा है, ‘मां, मैंने आज का पर्चा बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा’। और तुम जानते हो, सवेरे का सपना हमेशा सच्चा होता है। लो उठो, मैंने चाय बना ली है। पीकर बड़े बाबू के पास हो जाओ। देर हो गई तो बे दफ्तर चले जाएगे। उठो। उठो भी।”

उसके बाद क्या हुआ, यह जाने बिना रमेश वहा से सीधा अपने घर लौट आया। उसे लगा, उस बृद्ध दंपती का स्वप्न भग करने के लिए उसे जिस हिम्मत की जरूरत थी, उसे प्राप्त करने के लिए अभी उसे बहुत परिश्रम करना होगा।

## सत्य को जीने की राह

व्यवधान पड़ गया तभी। घंटी बज रही थी। दो क्षण बाद श्रीमती खन्ना के पीछे-पीछे गदराए योबन और उदासीन, पर अत्यंत आकर्षक आखोवाली एक युवती ने वहां प्रवेश किया। उसकी उगली पकड़े थी शैशव की प्रतिमूर्ति तीन वर्ष की एक बच्ची। वर्ण जितना गौर था, आवाज उतनी ही मधुर थी। युवती ने सीधे खन्ना की ओर देखते हुए कहा, “अंकल, पापा को पढ़ने के लिए कुछ मैंगजीन चाहिए।”

संदीप खन्ना ने साइड टेबुल पर पड़ी पत्रिकाओं की ओर इशारा करते हुए कहा, “वे हैं न, जो चाहो, ले जाओ।”

फिर बच्ची को अपनी ओर खींचते हुए बोले, “ओर तुम्हे क्या चाहिए? हाथी बाली किताब?”

“नहीं नानाजी,” बच्ची ने तुरंत जवाब दिया, “हमें तो चाकलेट चाहिए।”

बात कुछ इस भोलेपन से कही गई थी कि सभी हँस पडे। श्रीमती खन्ना तब तक कॉफी का प्रबंध कर चुकी थी। बोलीं, “अमा करेंगे विनयजी, मुझे अभी कॉलेज जाना है। बहू भी अपने दफ्तर चली गई है।”

बात काट दी उदासीन आंखोवाली युवती ने, “मैं तो हूं आंटी, मैं आ जाऊँगी।”

खन्ना बोले, उसी प्रवाह में, “आवश्यकता होगी तो आना ही पड़ेगा।”

सबके जाने के बाद टाइम्स के संवाददाता विनय बत्रा ने पूछा, “क्या यह सुर्जीत सिंह की बेटी नहीं है? अभी, अभी मैंने उन्हे अपनी बालकनी मे बैठे देखा था।”

“जी हाँ, यह उन्हीं की बेटी है,” संदीप खन्ना ने उत्तर दिया और मौन हो गए। दो क्षण बाद बोले, धीरे-धीरे शब्दों को तोलते हुए, कहीं दूर से, “अच्छा हुआ तुमने दोनों को देख लिया। तुमने पूछा था न कि सुर्जीत सिंह और उसके परिवार को अपने घर में पनाह देकर मैंने अपने-आपको और अपने परिवार को क्यों संकट में डाला? बहुत-से उत्तर दिए जा सकते हैं इस प्रश्न के, परंतु विनय, मैं तुम्हे वह कुछ बताना चाहता हूं, जो किसी को नहीं बता पाया..।”

संदीप खन्ना फिर मौन हो रहे। विनय को लगा कि न जाने कहीं से आकर उस मौन मे असंख्य घंटियां बज उठी हैं और उनके ऊपर से होकर आता हुआ संदीप खन्ना का स्वर किसी रहस्य के अधकार को अनावृत कर रहा है।

संदीप खन्ना कह रहे थे, “जिस समय उस पागल भीड़ ने मेरे मकान पर

आक्रमण किया उस समय सहसा मुझे ऐसा लगा कि क्षण भर म म संतास बबै की लब्बी अवधि पार करक सन् 1947 म जा पहुचा हूँ सब कुछ वैसे का बैसा कोलाहल करते पागल लोग, कड़वे धुए से भरा आकाश, नर-मास की चिड़ाध से गधाता बानावरण। कभी स्टेनगन गनगना उठती, कभी नाना रूप नारे गूज उठते और गूंजते ही रहते।

“ठीक याद है मुझे, उस दिन कृष्ण-जन्माष्टमी थी, पर किसी कृष्ण ने जन्म नहीं लिया था। लिया होता तो आज।”

सदीप खना फिर मौन हो गए। विनय बत्रा उनके निरंतर कठोर होते रक्तहीन चेहरे को देखे जा रहे थे। कुरसी पर बैठे-बैठे उन्होंने जुबिश की और जैसे सचमुच भूतकाल में ज्ञांक रहे हों, वे बोले, “तब भी हम पड़ोसी थे, मैं और सुरजीत। और जबान भी, मुसलमानों के विरुद्ध उन्माद की सीमा तक निर्मम, ऐसा लग रह था मानो महानाश के स्वामी रुद्र ने अपना तांडव नृत्य शुरू कर दिया है और निरंतर एक तर पर बजते घुंघरुओं की कर्कश ध्वनि और अदृहास के गर्जन ने प्राणी मात्र की चेतना को लील लिया है। वे बस, यत्र मात्र है उसकी सर्वभक्षी इच्छा के। जिस समय दिल्ली महानगर की बस्तिया जल-झुलसकर राख हो रही थीं, उस समय सुरजीत और मैं, भय और घृणा के सेलाब में बहते हुए वहाँ जा पहुंचे जहाँ एक खंडहर होते मकान में एक सत्रह-अठारह वर्ष की सद्यायौवना को छोड़कर कोई नहीं बचा था। उसने अपने को अपने ही मा-बाप और भाई-बहनों की लाशों के नीचे छिपाकर बचा लिया था। कितनी अदम्य है जीने की लालसा! लाशों के ढेर से अपने को अलग करने की प्रक्रिया में उसकी दृष्टि हम पर पड़ी। एक चीख निकल गई उसके कठ से, ‘न...न...ई...नहीं...’

“फटे बस्त्रो और अस्त-व्यस्त लंबे घने काले केशों में भी वह भयातुर और सहमी फाख्ता-सी बहुत सुंदर लग रही थी, और हम लोगों के चेहरों पर से इनसानियत की नकाब कभी की उत्तर चुकी थी। सुरजीत ने चील की तरह झपट्टा मारकर उस लड़की को दबोच लिया। मैंने अनुभव किया कि तब हमारी हथेलियों में शेर के पजे उग आए थे और दांत सुअर के दांतों में बदल चुके थे। पर सब कहता हूँ, तब भी क्षण के सहस्रवें भाग में मुझे ऐसा लगा था कि चीखकर सुरजीत से कहूँ, ‘हरामजादे, उस लड़की को छुआ तो खून पी जाऊँगा।’ पर कह कुछ नहीं सका, क्योंकि मेरे अंतर में भी सोता हुआ चीता अगड़ाई ले चुका था। मैं कूदकर उस बदहवास लड़की के कपड़े उतारने लगा। एक बार, बस एक बार, ये करुण धिघियाते स्वर मेरे कानों से टकराए थे—‘इसके बाद तुम मुझे जान से तो नहीं मार डालोगे..?’”

“उस नीम बेहोशी में बड़बड़ती वह जूही की कली, कैसी मासूम दिखाई दे रही थी। मासूमियत खूबसूरती को और भी मादक बना देती है। उसी मादक खूबसूरती को हम दर्दि देर तक झिझोड़ते-नोचते रहे, तब तक, जब तक उसका शरीर क्षत-विक्षत

नहीं हो गया। बीच मेरे एक-दो बार उसकी चेतना लौटती-सी लगी। सुरदा पलकों ने जुबिश की और रक्तहीन होठ हिले। शायद, उसने कुछ कहा था, पर हम कुछ नहीं सुन सके, क्योंकि शब्द आवाज खो बैठे थे।

“न जाने कहा से मक्किखयों के झुंड के झुंड बहते रकत और खुलै जख्मों पर मढ़ा रहे थे। चीटियों और मकोड़ों के लिए तो जैसे किसी ने महाभोज का आयोजन किया था। वे नीब्र गति से ‘डबल मार्च’ करते हुए लाशों पर कब्जा कर रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर में दूर से आते ‘अल्ला हो अकबर’ और ‘हर हर महादेव’ के नारे वह के बातावरण को कंपा जाते और फिर देर तक आंसू गैस के गोले धूम-धड़ाम से फूटते और स्टेनगन से अनवरत दनदनाती गोलियों की कर्कश ध्वनि छाती में बज उठती

“सहसा मैंने देखा कि सब ओर से निस्संग सुरजीत, मजिल पर पहुंचे पंथी की तरह, बड़े सतोष और सब्र से बैठा पान बना रहा है। मलबे के नीचे पानदान न जाने कैसे साबुत बच गया था। उसने दो बीड़े तैयार किए, एक मुझे दिया दूसरा स्वयं खाया, फिर परम तृप्ति से दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, ‘आओ, अब जल्दी से कीमती सामान बटोर लें। देर हो गई तो और लोग हिस्सा बंटाने आ जाएंगे।’

“कुछ क्षण बाद उस मलबे के नीचे से हम कीमती वस्त्रों और गहनों का एक बक्स निकालने में सफल हो गए।

“एक क्षण के लिए मेरे मन मेरे बार फिर यह विचार कौथ गया कि जो कुछ हम कर रहे हैं वह तत्कालीन परिस्थितियों मे अनुचित भले ही न हो, मानवीय तो किसी भी दृष्टि से नहीं है उचित होना ही मानवीय होने की शर्त नहीं है

“तभी सुरजीत ने पुकारा, ‘देखो-देखो, वह होश में आ रही है।’

“एक ठड़ी सिहरन दौड़ गई मेरी रगों में। वह लहूलुहान लड़की होश में कैसे आ सकती थी? शायद, मेरी तरह सुरजीत के भीतर भी अपराध भावना जागी थी और उसी भावना से प्रभावित होकर उसे लड़की के होश में आने का भ्रम हुआ था..

“इतने में उसी तरह की एक आर्त चीख सुनी मैंने। सुरजीत ने कृपाण से उस लड़की का सीना चीर दिया था। एक बार शायद उसका चेहरा ऐंठा था या वह भी मेरा अपराध-बोध ही था! दूसरे ही क्षण लाश की जद्दोजहद करने की सारी शक्ति समाप्त हो गई, पर समाप्त नहीं हुई हमारी जानवर होने की क्षमता। सुरजीत सिंह ने मुझसे कहा, ‘यह लाश उठाकर बाहर ले चलो।’

“आज विश्वास नहीं कर पा रहा, पर उस दिन मैंने उसके आदेश का तुरंत पालन किया था। बाहर गली मेरे एक सफेद घोड़े का शव पड़ा था। उसने उस लड़की के शव को उस घोड़े के शव के साथ स्टाकर ऐसे लिटा दिया कि उनकी टांगें एक दूसरे मेरे उलझ गईं। सुरजीत ने एक क्षण परम संतोष से उसे देखा और कहा, ‘सुदर लड़कियां जानवरों को भी पस्द करती हैं।’

“फिर हमने जोर का अद्भुत किया और सामान से लदे-फदे विजयी योद्धाओं

को तरह गला से बाहर आए और विजयोल्लास से चाखती चिल्लाती भीड़ में जा मिले नागरिकों की रक्षा के लिए तैनात सैनिक हाथों में स्टेनगन थामे और चेहरों का हेल्मेटों से ढके ऐसे खड़े थे मानों धोषणा कर रहे हों, 'हम बुरा कर सकते हैं पर बुरा देख नहीं सकते।' "

विनय बत्रा स्तब्ध थे। पूरा समय एक शब्द नहीं बोले। अब एक विचार कोधा कि व्यवधान पड़ गया। उदास आँखों वाली सुरजीत की बेटी द्वारा खोलकर अदर आ रही थी। दोनों चौक पड़े और अजनबियों की तरह उसकी ओर देखने लगे। सब कुछ गड्ढमड्ढ हो रह था—यह सुरजीत की बेटी थी या अपने ही परिवारजनों की लाशों के बीच अपने को छिपा लेने वाली वह बदकिस्मत मुस्लिम युवती थी—जिसकी अस्मत को सरदार सुरजीत सिंह और श्री सदीप खन्ना ने झिंझोड़ा-नोचा था।

सुरजीत की बेटी सहम गई, बोली, "मैंने शायद, आपकी पोशीदा बातचीत में खलल डाला। मैंने सोचा था कि शायद, आपको किसी चीज की जरूरत हो।"

अस्त-व्यस्त संदीप खन्ना ने किसी तरह अपने को बटोर, मुस्कराए, बोले। "न..न ऐसी कोई बात नहीं है, बेटी। बस, तुम अचानक ही आ गई.."

आश्वस्त युवती इस बार हँस पड़ी। जैसे कमरे में धूप खिली हो, बोली "अच्छा अकल, पापा कहते हैं, आप जब जाएं तो उनके साथ चाय पीकर जाए, आप दोनों" और उत्तर की अपेक्षा किए बिना जैसे आई थी वैसे ही चली गई, पर इस बार ऐसी सुगंध छोड़ गई कि देर तक वे दोनों मौन-शांत अपने में खोए रहे। दो क्षण बाद मौन भग करते हुए फिर संदीप खन्ना ने ही कहा, "जिस समय वह बौराई भीड़ मुझे घेरती जा रही थी, तब सुरजीत की यही लड़की मेरे सामने आ खड़ी हुई थी, और इसके चेहरे में उस मुस्लिम युवती का चेहरा गड्ढमड्ढ हो गया था, जिसे..कैसे हो जाता यह सब, कैसे? इसके बाद मैं और कर ही क्या सकता था? क्या मैं एक बार फिर अपनी बेटी के शरीर को झिंझोड़ता या झिंझोड़े जाते देखता। एक ही बात है दोनों. दोषी तो मैं भी था। माना सुरजीत सिंह को दंड मिल जाता, पर मुझे मुझे लगा मुझे प्रायशिच्चत करना चाहिए...मैंने अपने ही को तो बचाया है।"

आगे उनसे बोला नहीं गया। विनय बत्रा स्तब्ध थे। उनके भीतर भी सब कुछ गड्ढमड्ढ हो रहा था...वह मुस्लिम बाला और सरदार सुरजीत सिंह की बेटी, सैतीस वर्ष पूर्व के और आज के सरदार सुरजीत सिंह, सदीप खन्ना तथा निरंतर बदलते समीकरण वाली वह बौराई भीड़, जिसका लक्ष्य तब मुसलमान थे, आज सिख हैं और शायद कल.. और शायद कल..

फिर कल के बाद आने वाला कल यानी—निरंतर समीकरण बदलेंगे, लक्ष्य भी बदलेंगे, लेकिन आदमी के भीतर सोया राक्षस इसी प्रकार निरंतर जागता रहेगा अपनी भूख मिटाने को, नए-नए मुखौटे लगाकर

संदीप खन्ना बोल रहे थे किसी गहरे अंतर से जैसे, अपने से ही बातें कर रहे

हों, “बत्रा! लड़ना हमें उम राख्स से है, लेकिन हम हैं कि बेजान मुखौटों को नोच रहे हैं।”

समुद्री तूफान मे फसा यात्री जैसे किनारे पर पहुच गया हो, बत्रा ने स्वस्ति की सास लेकर कहा, उतने ही धीमे पर दृढ़ स्वर में, “कितनी प्रगति कर चुके हैं हम, कितने अद्भुत आविष्कार किए हमने, पर इस सत्य को जीने की राह अज तक नहीं खोज पाए। शायद, खोजना चाहा ही नहीं।”

## आखिर क्यों

शकर हमेशा कुछ न कुछ सोचा करता है। उसके दोस्त उसे सपने देखने वाला कहते हैं, पर उसे परवाह नहीं। वह सोचता है। इस दुनिया की बात सोचता है, उस दुनिया की, तारों की, और कुछ नहीं तो घर मे भागते फिरते नेवले की बात ही ले बैठता है। पर इधर उसे सोचने के लिए नया मसाला मिल गया है। शहर में अभी-अभी दगा हुआ। कुछ हिंदू-मुसलमान धायल हुए, कुछ मर गए। आबादी मे कुछ ज्यादा फरक नहीं पड़ा, पर जहाँ देखो फौज। सबसे बड़ी मुसीबत यह कि सरेशाम से घर मे बंद होकर बैठो। शंकर बेताब हो उठा—आखिर यह कफर्यू क्यों लगा है? लोग लडते क्यों हैं? पेट मे छुरा क्यों भोंक देते हैं? आखिर क्यों .

बस, उसकी टेन चल पड़ी। हिंदू-मुसलमान, ईश्वर के मानने वाले और न मानने वाले, धर्म की जरूरत और इनसानी जिंदगी के बुनियादी असूल—इन सभी मसलो पर उसने विचार कर डाला। करते-करते उसे लगा कि उसने उलझने सुलझा ली है। तब उसने सोचा, यह दुनिया कितनी पागल है? मामूली-सी बात को लेकर इतना तूफान खड़ा कर दिया है। यह बच्चों की सीधी-सी बात उसके दिमाग मे नहीं आती। आखिर क्यों वह इतनी बेअकल है. ?

तभी उसकी पत्नी पार्वती अंदर आकर बोली, “दूध लीजिए।”

उसने लापरवाही से कहा, “मेज पर रख दो।”

“पी लीजिए न, ठंडा हो जाएगा।”

“अभी पीता हू जी। तुमने काम निपटा लिया?”

“जी, क्यों?”

“कुछ नहीं, ऐसे ही, जरा बातें करनी थी, मामूली-सी बात है।”

पार्वती हँस पड़ी, “आपकी मामूली-सी बात मै जानती हू। मेरे पास इतना बक्त नहीं है। आपका पुलोवर पूरा करना है।”

और कहकर पार्वती चली गई। शकर उतावला हो उठा। कोई होना चाहिए जिससे मैं बाते कर सकू; जिसको मैं समझा सकू।

रात भीग चुकी थी। चारों तरफ सन्नाटा था। झींगुर की गूंजने वाली आवाज भी सुनाई नहीं पड़ रही थी। कभी-कभी कहीं दूर कुछ आवाज पैदा होती जैसे नदी का किनारा टूट कर यानी मे 'छप' से गिरता या स्टेशन पर हंजन शटिंग के लिए निकलता और पक्काएक ऐसा जान पड़ता जैसे कोई भागी भी हू रही है। पर आज शकर ने इधर

जरा भी ध्यान नहीं दिया, वह जानता है, आजकल उसके चारों तरफ की दुनिया बुरी तरह फँसी हुई है। उनके मामने जिदगी और मौत का सबाल है। इसलिए वह एक-दूसरे को मार देना चाहते हैं। सबाल उठा— सब्र मारने पर तुले हैं तो जीता कौन रहेगा? जवाब मिला— जो ताकतवर हैं। तो जिदगी की बुनियाद ताकत है इस विचार के आते ही उसका दिल दर्द से कराह उठा— ताकत सबसे बड़ी चीज़ है। ताकत की पूजा करना इनसान का पहला फर्ज़ है। ताकत से डर पैदा होता है और डर से शाति आह। शानि डर की बेटी है। तभी उसमें आलस और सुस्ती है। तभी उसमें मौत है। उसका दिमाग अनश्वनाया— पर शास्त्र कहते हैं। एकदम वह चौक पड़ा— कहीं खटखट हुई। आखे और कान चौकन्ने हुए। कानों ने सुना, कोई धीरे-धीरे आ रहा है। दिमाग ने सोचा— कौन? पार्वती। नहीं तो आँखों ने देखा— ओह। यह तो एक आदमी है। मन खिल उठा। कितनी अच्छी बात है। मुझे आदमी की ही जरूरत थी। मुझे उससे बहुत बाते करनी हैं। और वह जल्दी से उठा। स्विच दबाया और मुड़कर निहायत अदब से कहा, “आइए, आइए। मैं आपकी राह देख रहा था। आप खूब आए। मुझे आपसे बहुत बात करनी है। मसलन यह ताकत क्या है? लोग इसे क्यों चाहते हैं और, अरे! आप खड़े हैं। आइए न, आगे आइए। यहाँ बैठिए, पलग है अहा। आप सोचते हैं कोई और आ सकता है। जी नहीं, पार्वती पुलोवर बुन रही है, मुना सो रहा है और आप चाहे तो किवाड़ बद कर देता हूँ।”

शकर मुड़ा और दरवाजे की चटकनी बद कर दी। अजनबी अभी तक बुत की तरह खिड़की के नीचे खड़ा था। न बोलता था न सुनता था, बस एकटक देखता था। उसके चेहरे पर अंधेरा था पर जिस्म तदुरुस्त और गठा हुआ था। उसने शलवार और कुरता पहना था। सिर नगा था। पैरों में पुरानी पेशावरी चप्पलें थीं। कपड़े भी साफ नहीं थे। शकर अब आगे बढ़ा और पास आकर उसको बांह से पकड़ लिया, बोला, “आप कुछ सोच रहे हैं पर यकीन मानिए आप मुझसे ज्यादा नहीं मोच सकते। कैसे तो इनसान की आदत है कि वह ‘मैं हूँ’ के साथ साथ ‘मैं जानता हूँ’। इस सच्चाई की हिफाजत जी-जान से करता है पर आज मैं इससे भी आगे बढ़ गया हूँ, मैंने एक और सच्चाई की खोज की है। उसी को लेकर मैं किसी आदमी से विचार करना चाहता था। घर मे पार्वती है पर वह तो ‘मैं हूँ’ से आगे बढ़ती ही नहीं। बताइए, आप क्या मानते हैं?” कहते-कहते वह उसकी बांह पकड़े घसीटता हुआ-सा पलंग के पास ले आया और फिर दोनों हाथों से उसे बिठा दिया। रोशनी में उसका चेहरा चमक उठा। देखा, वह कुछ लंबा है, रंग चिह्न और नकशा आदमी का है। हड्डिया चौड़ी और मजबूत, ओढ़ कुछ मोटे, आँखें कुछ डरावनी; एक अजीब शक्ल— डर हैरानी और खौफ से भरी हुई। शकर बोला, “हाँ तो आप क्या मानते हैं?”

वह चुप।

“आप नहीं बोलते? क्या गूँगे हैं?”

वह कापा उसक। आबज्ज फूटा ज इ इ

शकर मुसकराया आप गूगे नहीं हैं बड़ा अच्छा हुआ तो कहिए आप क्या कहते हैं? आर कहकर मज को तरफ घृमा देखा, दूध रखा हुआ है। बोला, देखिए म भी कैसा बेबकृफ हू। आप आए और आपसे बहम करने को तयार हो गया आपकी बात तक नहीं पूछी। पार्वती ठीक कहती है, मैं कुछ नहीं सोचता। कैसी मजेदार बात है? हमेशा सोचता रहता हूं और पार्वती आराम से कह देती है—आप बिलकुल नहीं सोचते। उसका भतलब है, मैं समय पर समय की बात नहीं सोचता। शायद वह ठीक कहती है। आप पहली बार आए हैं। शास्त्र म आपको मेहमान कहा है और लिखा है, मेहमान को सबसे पहले अर्थ देना चाहिए। खैर, आप दूध पीजिए और कुछ खाए तो पार्वती को पुकारूँ?"

"जी।"

"पुकारूँ? शायद खाना रखा हो।"

"जी नहीं।"

"आप तकल्लुफ करते हैं। आप आए हैं। आप मेरे साथ दूध पिएगे और हा। जाडे की रुत है। मेरे पास बादाम रखे हैं।"

और वह उठा। अलमारी खोली। दो प्लेट, दो प्याले और एक शीशी निकाल लाया। शीशी मे मुन्ना के लिए बादाम और काजू रखे हुए थे। उन्हीं को प्लेट मे डाला, प्याले में दूध भरा फिर छोटी मेज उठाकर प्लग के पास रखी। सब सामान उस पर सजाया और बोला, "अब आइए! खाएंगे। और बाते करेंगे।"

लेकिन इसी बीच, जब शकर की पीठ उसकी तरफ थी, अजनबी फुर्ती से उठा और खिडकी के पास आया, झुका और तेजी से हाथ मे छिपी हुई चीज बाहर फेकना चाहा। तभी शंकर मुड़ा। अजनबी कापा, वह चीज खून से वही खिडकी के फर्श पर गिर पड़ी। शंकर चौंका, "क्या गिरा?" इधर-उधर देखा फिर काम करने लगा। अजनबी को काटो तो खून नहीं। मुह सूख गया। थर-थर कापने लगा, पर शकर ने उसे नहीं देखा। काम पूरा कर चुका तो बोला, "अब आइए, खाएंगे और बाते करेंगे।" तभी उसकी नजर खिडकी पर पड़ी। कुछ चीज चमक रही थी। वह उठा, देखा, छुरा था—चमकता हुआ फौलादी छुरा। वह मुसकराया। उसने छुरा उठा लिया और बोला, "आज कैसा सुदर दिन है। बाइबिल में लिखा है," उसने कहा, "रोशनी हो और रोशनी हो गई। मैंने भी चाहा—बातें करने के लिए आदमी चाहिए, तुम आ गए। बाते छुरे पर करनी थी, छुरा आ गया। सचमुच मैं खुदकिस्मत हू।" वह फिर अपनी जगह आ बैठा। छुरा उसने प्याली के पास मेज पर रख दिया और कहा, "आइए। हम अपना काम शुरू करें। बात यह है कि मुझे छुरे के बारे मे ही बातें करनी थीं यानी इसके इस्तेमाल के बारे मे। ऐसा कि आजकल होता है—आप जा रहे हैं, पीछे मे आकर कोई भी आपके पेट मे या कमर मे या गर्दन मे, गरज कि कही भी छुरा भोंक देता है।

आखिर क्यों ?”

अजनबी ऐसे जैसे पत्थर को मूरत हो न हिले न डुले, पलके अडिग, दिल धक्कधक, टिमाग झनझन, जवाब के लिए जैसे ही शंकर ने आखे उठाई तो अचरज से बोला, “अरे। आप बैठे हैं। वाह ! खाते क्यों नहीं? पहले खाइए, फिर जवाब दीजिए। सोचकर जवाब दीजिए। छुरा आपके सामने रखा है। इस पर ध्यान जमाइए। यह क्यों बनाया गया? इसकी क्या जरूरत है? कुछ लोग कहते हैं, इसकी बिलकुल जरूरत नहीं। लेकिन खैर, इस बक्त मानकर चलते हैं कि यह बना है तो इसकी जरूरत है। पर जरूरत क्या है? इसको कहा काम में लाना चाहिए? इस बात पर हमें जरा तफसील से सोचना है। इसी भवाल पर सोचने-सोचते मैं ‘मैं हूँ,’ ‘मैं जानता हूँ’ से आगे बढ़ गया। यानी ‘दूसरे हूँ’ ‘दूसरे जानते हूँ’ और मैं और दूसरे एक हैं। दोनों के मसले एक है, दोनों के हल एक हैं। फिर यह गड़बड़ घोटाला क्यों है? समझ में नहीं आता—आखिर क्यों ?”

इतना बोल चुकने के बाद शावाशी के लिए जब शकर ने अजनबी की तरफ देखा तो वह मुह में काजू डाले, औंठों से प्याला लगाए, कांपता हुआ उसी की तरफ एकटक देख रहा था। शकर के देखते ही उसने प्याला मेज पर रख दिया और काजू को जल्दी-जल्दी चबा डाला। तब तक शकर ने तीन-चार काजू खाए और आधा प्याला दूध पी लिया। फिर बोला, “अच्छा ! एक सीधा-सों सवाल पूछता हूँ।”

“जी !”

“तुम आदमी हो, यह तो मैं देख ही रहा हूँ। गरीब लगते हो। मुश्किल से पेट भर पाते होगे। बीबी-बच्चे सभी हैं। होते ही हैं। उनका पेट न भरता होगा तो कलेजा फटता होगा। देखो न, मैं भी दफतर में बाबू हूँ। खाने-पीने लायक कमाता हूँ पर सच मानो, कभी-कभी वह भी नहीं पुरता। हा, जरा मयार में फरक जरूर है। तुम मुरदों का खाना खाते हो। मैं भूखों का खाता हूँ। पर आदमियों का न तुम खाते हो, न मैं।”

अजनबी की आवाज पहली बार ठीक-ठीक फूटी, बोला, “सच कहता हूँ बाबूजी, आधी जून भी पेट नहीं भर पाता।”

“जानता हूँ। तुम्हारी सूरत कह रही है। बच्चे कितने हैं?”

“चार।”

“लीजिए आप हैं, बीबी है, चार बच्चे और .”

“जी, अम्मा हैं।”

“आर करते क्या हो?”

“एक दुकान पर नौकर हूँ। चालीस रुपये मिलते हैं।”

“अब सोचो। सात आठमी और चालीस रुपये। फिर इतना बड़ा शहर—जिसमें एक से एक बढ़कर आनीशान इमारते, सैकड़ों बैंक, मिलें, फैकिर्यां और चमचमाते बजार हैं। दूर क्यों जाते हो तुम्हारा मालिक कितना कमाता है?”

"जी, उनकी किराने की बड़ी दुकान है। थोकफरोश है। खुदा झूठ न बुलाए पाच-छै हजार महावार तो कमाते ही हैं।"

"तो कभी सोचा, ऐसा क्यों है? क्यों थोड़े-से लोग दूसरों की मेहनत पर ऐश करते हैं? क्यों इन्होंने इतना धन जमा किया है? क्यों पसीना बहाकर भी तुम भूखे मरते हो? आखिर क्यों, कभी सोचा?"

अजनबी कुछ जवाब न दे सका। अब वह कुछ बेतकल्लुफी से बादाम खाने की कोशिश कर रहा था। शंकर ने फिर कहा, "उनके बच्चे खाकर खराब करने में फख्त समझते हैं। खुदा उनको खराब करने को भी देता है। उनकी औरते ऐशोइशरत की पुतलिया बनकर गरीब दिलों में आग लगाती फिरती है, खुदा उनके लिए आग लगाने के सामन मोहर्या करता है, पर तुम्हारे बच्चे मेहनत करके जब पेट भरने को रोटी मांगते हैं तो उन्हें नहीं मिलती। तुम्हारी मा, तुम्हारी बहन, तुम्हारी बीबी अपनी इज्जत ढकने के लिए कपड़ा मांगती हैं वह भी खुदा उन्हें नहीं दे सकता! कभी सोचा मेरे दोस्त, ऐसा क्यों है?"

अजनबी का हाथ रुक गया था। उसका दिल भरा आ रहा था। उसकी खूखार आखों में रोशनी चमकने लगी थी और छुरा उसी तरह मेज पर रखा हुआ था। अदर से पार्कती दो बार शंकर को सोने के लिए बुलाने आई। उसने देखा, दरवाजा बंद है और सुना, वह किसी के साथ बड़ी तेजी से बातें कर रहे हैं। वह लौट गई। फिर आई दरवाजा उसी तरह बद था। शकर अभी-अभी चुप हुआ था। उसने दूसरी आवाज सुननी चाही। खड़ी रही, पर आवाज आई तो शकर की ही थी। अगर्वे वह गुस्से में थी तो भी वह मुसकरा पड़ी और फुसफुसाई— अपने सामने वह कभी किसी को नहीं बोलने देते।

और शंकर कह रहा था, "मेरे दोस्त! सोचते सब हे!" तुम, हम, वह— सब। पर अफसोस, गलत सोचते हैं। क्या सोचेगे— तुम पूरब की तरफ मुह करके पूजा क्यों करते हो? तुम बुत क्यों पूजते हो? तुम शादी ऐसे क्यों करते हो? गरज कि झटका हलाल, आवागमन, खुदा, ईश्वर, स्वर्ग-नरक न जाने क्या-क्या मसले हैं? सोचते हैं और लड़ते हैं। फैसला तो इन बातों का हो नहीं सकता। किसने देखा है ईश्वर को या खुदा को? कौन जानता है, मरकर हम कहाँ जाते हैं? क्या फिर जन्म लेते हैं या नहीं? जिस चीज का कोई हाजिर सबूत नहीं उसके बारे में फैसला कैसा? और जिसके बारे में फैसला नहीं हो सकता उसके बारे में लड़ाई कैसी? यह तो ऐसे मसले हैं कि जिनको दिलचस्पी है, खोज करते रहें। बाकी सब लोग आजादी से किसी भी तरफ मुह करके पूजा करे। बाकी मस्जिद के आगे बाजा और गाय की कुर्बानी ऐसी बाते! जड़ तो यह है नहीं, बहाने हैं। दिन-भर ट्राम धडधडाती है, हवाई जहाज धे-धें करते हैं मोटर पो- पों पुकारती रहती है पर कभी-कदाक बाजा नहीं बज सकता? और जिट करने वाले भी अजीब दिमाग वाले हैं। मिलटरी के लिए लाखों गाये कटती हैं पर एक गाय के लिए खून बहा देगे। यह कोई जीवन के असली मसले थोड़े ही हैं। असली

मसला है 'मैं हूँ' इसका हल है 'दूसरे भी है, दूसरे के होने में ही मेरा होना है।' मजानता हूँ, दूसरे जानते हैं। ज्ञान की कोई हठ नहीं, यह बाद की बातें हैं। हम पहले जो असली बात है, उसको भूल गए हैं। दूसरी, जो नकली है, उसके लिए पागल हुए फिरते हैं। एक-दूसरे को खा जाना चाहते हैं। अच्छा बताओ, सब मुसलमान हो जाए तो क्या सबाल खत्म हो जाएगा? दुनिया में इतने मुसलमानी राज हुए और हैं भी। क्या वह सब सुखी थे? क्या उन्होंने 'मैं हूँ'—'दूसरे हैं'—'दूसरों के होने में मेरा होना है'—इस सच्चाई को पहचाना था? या हिंदुओं या दया की मूर्ति ईसा के भक्तों ने, या अकल के पुनर्लेकन्यूशियस के चेलों ने या तथागत बुद्ध के पैरवों ने बुनियादी सच्चाई का हमेशा पालन किया और करते हैं? मेरे प्यारे दोस्त! इस सच्चाई को पहचानने के लिए किसी के पास जाना जरूरी हो है, यह बात नहीं है। यह इनसानी जिदगी का बुनियादी मसला है और इसके लिए इनसान बने रहना जरूरी है। सोचना चाहिए कि दूसरों के होने में मेरा होना कैसे है? अनाज पैदा करके भी किसान भूखा क्यों रहता है? महल बनाकर भी मेमार झोपड़ों में सिर क्यों छिपाता है? कपड़ा बुनकर भी जुलाहा तन क्यों नहीं ढक पाता? इसके जवाब में अकसर कहा जाता है—जो पैदा करने वाले हैं, वह अपनी पैदा की हुई चीज का इस्तेमाल नहीं करते, दरख्तों पर कितने फल आते हैं पर वह उन्हें कभी नहीं खाते। सुनने में कितनी प्यारी पर असल में कितनी गलत दलील है। फल दरख्त की खुराक नहीं है। जो उसकी खुराक है वह उसे खुद-ब-खुद मिलती है। कुदरत उसे गैस देती है, इनसान खाद देता है, पानी भी देता है। न दे तो फल न मिले। लेने का देना है। दूसरी तरफ, अनाज पैदा करने वाले किसान की जिदगी वही अनाज है जो वह पैदा करता है। वही उससे छीन लिया जाता है और उनको दे दिया जाता है जिन्होंने उसके लिए कोई मेहनत नहीं की। आखिर क्यों? आखिर यह बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आती? आखिर क्यों तुम जेब में छुरे डाले उन आदमियों को मारने की टोह में रहते हो जो कमोबेश तुम्हारी ही तरह भूखे नंगे और बेघर हैं। फक्त सिर्फ इतना है कि वह शायद तुम्हारी तरह पूजा नहीं करते और मुझे तो इसमें भी शक है कि तुम या वह कभी सही मानी में पूजा करते भी हो।' कहते-कहते शंकर अपनी जगह से उठा। फिर छुरा उठाया और धुमाने लगा। छुरा धूमता और बिजली की गोशनी में चमक उठता। अजनबी अचरज से उसे देखता रहा। शंकर यकायक रुका और उसके सामने आकर बोला, "यह छुरा आपका है?"

अजनबी कांपा, "मेरा..."

"जी, यह छुरा आपका है?"

"जी, हा!"

"तो फिर लीजिए और मुझे मार दीजिए। इसीलिए तो आप घर से निकले थे!" एकदम जैसे बिजली कौंधी। अजनबी काप-काप उठा। अंदर कोई तेजी से चौखा और फिर गिर पड़ा, शकर जैसे दुनिया में लौटा और बेमाख्ता बोला, "पार्वती" उसने

जल्दी से दरवाजा खाला देखा सामने फश पर पार्वती बेसुध सी घड़ी है उसने ममता स पुकारा पार्वती पार्वती

अजनबीं पीछे-पीछे उठ आया था, उसने कहा, जल्दी से पानी ले आइए। शकर दौड़ा, पानी उडेला कि जागकर मुन्ना रो उठा। अजनबीं ने बड़ी बेतकल्लुफी से बच्चे को उठा लिया और कहा, “मुह पर पानी के छीटे दीजिए, डर गई हैं।”

शंकर ने वैसा ही किया—एक लम्हा, दो तीन लम्हे, पार्वती कुनमुनाई। शकर ने पुकारा, “पार्वती”

पार्वती बोली, “जी।”

“आंखें खोलो।”

“जी।”

“कैसी तबियत है?”

“अच्छी है।” कह कर पार्वती ने आंखे खोल दी। गैर से शंकर को देखा, फिर देखा—कोई उसके बच्चे का लिए जल्दी-जल्दी महन मे धूम रहा है। पुचकारता है, चुमकारता है पर बच्चा बार-बार सुबक उठता है। अचर्ज से बोली, “कौन है?”

“एक दोस्त।”

“दोस्त।”

“हां दोस्त है। न होता तो क्या इस तरह धूमता!” और कहकर शकर हँस पड़ा, “डरपोक कहीं की। कान लगाकर बातें सुन रही थी। छुरा का नाम सुनकर जान निकल गई। उठो, खुद तो क्या जीओगी, दूसरों का जीना दूभर कर देती हो। अरे, मेरे लिए दर्द था तो जान पर खेल जाती...”

पार्वती अब पूरी तरह ठीक हो गई थी। लजा गई। बोली, “मैं तो समझी थी, सचमुच छुरेबाजी होने वाली है। तुम बड़े वैसे हो, डरा देते हो। जाओ, उनसे बच्चे को ले आओ। मैं उनके सोने के लिए बिस्तर लाती हूँ।”

पार्वती उठी और अदर चली गई। शंकर उठा और अजनबीं के पास आकर बोला, “माफ करना, मैं तुम्हारा नाम पूछना तो भूल ही गया था।”

“मुझे रफीक कहते हैं।”

“तब रफीक साहब, बच्चा मुझे दीजिए। बिस्तर बैठक में ला रहा हूँ।”

रफीक चौंका, “पर मैं जाऊंगा।”

“जाएंगे, कफर्यू में? क्या कहते हैं?”

रफीक ने सिर झुका लिया। भीतर से आवाज हुई। शंकर ने जाकर बिस्तर ले लिया। पार्वती ने पूछा, “खाना तो नहीं खाएंगे?”

शकर ने उसी बात को जोर से दोहराया, “अरे भाई, पूछती हैं, खाना तो नहीं खाएंगे।”

कांपता हुआ जवाब मिला, “नहीं, नहीं।”

“पूछो, दूध।”

शंकर ने पूछा, “दूध?”

रफीक ने जवाब दिया, “जी, पिया तो।”

शंकर बोला, “अरे हा। जो दूध तुम दे आई थीं वह हम आधा-आधा बाटकर पी गए। तुम मुझे हमेशा पागल कहा करती हो लेकिन अमल में मैं हूँ जरा कम।”

पार्वती हँस यडी, कहा, “जब खुद नहीं होते तो दूसरों को पागल बनाते हो। बात एक ही है।”

शकर भी ठड़ा मारकर हँसा और हँसता-हँसता बैठक में आया। देखा—रफीक गुमसुम एक कुरसी पर बैठा हुआ ऊपर की तरफ ताक रहा है। उसकी आँखें आसुओं से भरी हैं। अनदेखा करके शंकर ने कहा, “रफीक भाई, यह रहा तुम्हारा बिस्तर। बातें तुम से खूब हुईं। अब सोओ, सबेरे मुलाकात होगी। तब तक बिदा।” शकर ने हाथ उठाया और चला गया।

लेकिन सबेरे जब कभरे में आया तो देखा—रफीक नहीं है। सब सामान पहले की तरह है। बिस्तरा करीने से लिपटा है। उसके ऊपर एक परचा पिन किया हुआ है। जल्दी से निकालकर पढ़ा, रफीक ने लिखा था :

“समझ मे नहीं आता, यह सब क्या हुआ। मैंने खबाब देखा था या इस दुनिया से कहीं दूर भटक गया था। रात-भर सोचता रहा पर किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। बहरहाल, आपका सामना करने की हिम्मत इस वक्त मुझ मे नहीं है। यह मेरी कमज़ोरी है पर जो है, वह है। कभी उस पर फतह पा सका तो एक दिन आप लोगों का नियाज हासिल करने आऊंगा। तब तक के लिए अलविदा। अपनी अच्छी बीबी को मेरा सलाम देना। अपने प्यारे बच्चे को प्यार। और यह हुरा आपके लिए था, आप ही रखिए। यकीन रखिए, एक दिन आऊंगा ।”

## अधूरी कहानी

नारों की आवाज धीरे-धीरे धीमी, फिर बहुत धीमी पड़ गई। प्लेटफार्म की भीड़ छटने लगी और सब लोग अपनी-अपनी सीट पर जा बैठे। इसी बीच में एक मुस्लिम युवक एक हिंदू सज्जन से उलझ पड़ा था। युवक कह रहा था, “हम पाकिस्तान नहीं चाहते लेकिन कांग्रेस ने मजबूर कर दिया है। हम अब उसे लेकर छोड़ेगे।”

हिंदू साहब ने तलखी से जवाब दिया, “पाकिस्तान। जो पाकिस्तान आप छ सो बरस की हुकूमत में न बना सके उसे अब गुलाम रहकर बनाना चाहते हैं। एकदम नामुमकिन।”

एक भारी बदन के मुसलमान, जो सामने की बर्थ पर बैठे हुए थे, बीच में बोल उठे, “छ: सौ नहीं साहब। हमने नौ सौ बरस हुकूमत की है।”

“जी हा, नौ सौ वर्ष।”

“और उन नौ सौ बरस में हिंदू बराबर हमसे नफरत करते रहे।”

“जी, क्या कहा आपने?” हिंदू साहब बोले, “नफरत करते रहे? जो जुल्म करता है उससे नफरत ही की जाती है, प्यार नहीं।”

उन मुसलमान भाई ने बड़े अदब से कहा, “जुल्म क्या है? इस पर सबकी अलग-अलग राय है, पर मेरे दोस्त। आप लोगों ने हमें सदा दुरदुराया। हमारी छाया से भी आपको परहेज था। माना हम जालिम थे। पर जालिम के पास भी दिल होता है। वह कभी-न-कभी पिघल सकता है। लेकिन परहेज सदा मोहब्बत की जड़ खोदता है। वह नफरत करना सिखाता है। आपने हमसे नफरत की और चाहा कि हम आपसे प्यार करे। यह कैसे हो सकता था? माफ करना, मैं आप लोगों की कदर करता हूँ। मैं मेल-जोल का पूरा हाथी हूँ, पर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछना चाहूँगा।”

हिंदू भाई की तेजी और तलखी अब कुछ घबराहट में बदलती जा रही थी और दूसरे मुसलमान साहब अजीब अदा से मुस्कराने लगे थे। तो भी उन्होंने कहा, “जी। जरूर पूछिए।”

वह मुसलमान भाई निहायत शराफत से बोले, “अछूत हिंदू हैं, पर आप उन्हे ताकत सौप दीजिए, तब, मैं पूछता हूँ, वह आपसे प्यार करेगे या नफरत?”

हिंदू भाई सिटपिटाए। उन्हें एकाएक जवाब न सूझा। मुसलमान साहब उसी सजीदगी से कहते रहे, “मैं जानता हूँ, आज आप उनमें से कुछ को अपने बराबर मानने लगे हैं। मेरे ऐसे हिंदू दोस्त हैं जो इनसान-इनसान के बीच के भेद को दुनिया का

मवसे बड़ा पाप समझत है। पर मरे दास्त। भेद की इस लकार को बराबर गहरी करने मे जाने या अनजाने, जो लोग मदद करते आए हैं उनके पापो का फल तो आपको भुगतना ही पड़ेगा। आप यह न समझिए, मैं आपकी कौम और मजहब पर कोई हमला कर रहा हूँ। मैं आपके धर्म को समझता हूँ। पर दूसरे में कमी है, यह कहकर कोई अपनी कमी को सही साबित करने की कोशिश करे, तो वह महज अपनी जिद और बेवकूफी जाहिर करेगा। जो असलियत है उसका सामना करना ही इनसान की इनसानियत है। मैं आपको एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूँ। मुझे वह मेरी बाल्दा ने सुनाई थी।"

इतना कहकर वह पल-भर रुके। डिब्बे में सन्नाटा छा गया था। पता नहीं लगा, गाड़ी कब चल पड़ी और कब 'शडाक-शू छडाक-छू' की गहरी आवाज करती हुई अगले स्टेशन पर जा खड़ी हुई। सूरज ढूँकने लगा था। एक भाई ने स्वच दबा दिया। बिजली की हल्की रोशनी से डिब्बा चमक उठा।

तब उन भारी बदन के मुसलमान भाई ने कहना शुरू किया, "मेरे दोस्तो। बात आज मे तीस बरस पहले की है। हमारे सूबे मे एक छोटा-सा कस्बा है। उसमे हिंदू-मुसलमान सभी रहते हैं। वह सदा आपस मे मोहब्बत करते थे। एक-दूसरे के दुख-सुख के साथी थे, लड़ते भी थे, पर वह लड़ना प्यार की तड़प को और भी गहरा कर देता था। हिंदुओ के त्यौहारो पर मुसलमान उन्हें बधाई देते थे। मौसम की पैदावार का लेना-देना चलता था। होली जलती तो जौ की बाले पहुँचाने का जिम्मा मुसलमानो पर था। ईद के दिन हिंदू अपनी गाय-भैसो का सारा दूध मुसलमानो मे बाट देते थे। सबेरे ही दूध दुहकर वह अपने-अपने दरवाजों पर खड़े हो जाते और थोड़ा-थोड़ा दूध सब मुसलमानो को देते। उस दिन उनके हारों (अहारों या अंगीठियों) से धुआं नहीं निकलता था, लेकिन उनके दिल की दुनिया खिल उठती थी। मैं नहीं जानता, यह रिवाज कब और कैसे चला। इसकी बुनियाद जुल्म पर भी हो सकती है। पर उन दिनों यह मोहब्बत, इनसानियत और हमदर्दी का सबूत बन गया था। जो हो, उस साल भी ईद आई। मुसलमानों के घर जनत बने। उनके बच्चे फरिश्तों की तरह खिल उठे। लेकिन दुनिया आखिर दुनिया है। यहां जिदगी के बाद में मौत होती है। रज हमेशा खुशी का दमन पकड़े रहता है। इसीलिए जब सब लोग हँस रहे थे, एक घर में बालक दुखी मम चुपचाप अपनी अम्मी की चारपाई के पास बैठा था। उसकी अम्मी फातिमा बीमार थी। उसकी सास फूल रही थी। वह बेचैन हाथ-पाव फेंक रही थी। लेकिन यह बेचैनी बुखार की इतनी नहीं थी जितनी खाविंद की याद की। पार साल अहमद का बाप जिदा था तो घर में फुलबाड़ी खिली थी। वह अचानक एक दिन खुदा को प्यारा हुआ, घर बीराना हो गया। आज ईद आई है, लेकिन..

एकाएक फातिमा को न जाने क्या सूझा, वह उठकर बैठ गई। उसने हाँफते-हाँफते कहा, "मेरे बच्चे। कितना दिन चढ़ गया? तू दूध लेने नहीं गया।"

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, नहीं अम्मी,

फातिमा के दिल पर चोट लगी। उसकी आँखे भर आई। वह अपने को कोसने लगी—“मैं कैसी कमीनी हूँ। साल का त्यौहार आया है और मेरा बच्चा इस तरह मोहताज, बेबस बैठा है। नहीं, नहीं, आज ईद मनेगी जरूर मनेगी।

और उसने कहा, “जा अहमद। तू जल्दी जाकर दूध ले आ। मैं तब तक तेरे कपड़े निकालती हूँ। जा, जल्दी कर मेरे बच्चे!”

बच्चे ने एक बार अपनी अम्मी को देखा और फिर चुपचाप बाल्टी उठाकर बाहर चला गया। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। सब लोग दूध बाटकर अपने-अपने काम में लग गए थे। रास्ते में उसके साथी हँसते-हँसते लौट रहे थे और वे बाल्टी दूध से भरे चले आ रहे थे। उन्होंने उसे देखा और अचर्ज से कहा, “अरे! तुमने बहुत देर कर दी। तुम अब तक कहां सो रहे थे? अब तो सब दूध बांट चुका हूँ, मिया, अब जाकर क्या करोगे?”

अहमद सुनता और उसका दिल बैठने लगता। लेकिन उनकी बात ठीक थी। वह जिस दरवाजे पर जाता, वहाँ पर पड़े दूध के छीटों के अलावा कुछ नहीं मिलता। तब सचमुच उसका दिल भर आया। आखे नम हो उठी। लेकिन फिर भी उम्मीद की डोर पकड़े वह आगे बढ़ा चला गया कि अचानक एक दरवाजे पर किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, “अहमद! अहमद!!”

अहमद ने रुककर देखा—पुकारने वाला उसके स्कूल का साथी दिलीप है। वह उसी की जमात में पढ़ता है। उसकी आवाज सुनकर अहमद ठिठक गया। दिलीप दौड़कर आया, “तू अब तक कहां था? तेरी बाल्टी खाली है।”

अहमद की आवाज भरा रही थी। उसने कहा, “अम्मी बीमार हैं, मुझे देर हो गई।”

“तो!”

“दूध बिलकुल नहीं है?”

“ना।”

फिर कई पल तक वे दोनों उसी दरवाजे पर, जहां आध घंटा पहले दूध लेने वालों की आवाज गूंज रही थी, चुपचाप खड़े रहे कि अचानक दिलीप को कुछ सूझा। वह अंदर दौड़ा गया। जाते-जाते उसने कहा, “तू यहों ठहर, मैं अभी आया।”

अंदर वह सीधा अपनी माँ के पास पहुंचा और धीरे से बोला, “भाभी! कुछ दूध और है क्या?”

उसकी माँ बोली, “हा, है। तेरे और मुझे के लिए है। तू पिएगा?”

“नहीं।”

अचर्ज से माँ बोली, “तो?”

दिलीप नहीं बोला।

“अर, बात क्या है? बता तो।”

“अहमद को दूध नहीं मिला।”

“कौन अहमद?”

“वह मेरे माथ पढ़ता है। उसकी मा बीमार है इसलिए उसे देर हो गई।”

कहते-कहते दिलीप ने अपनी मा को ऐसे देखा जैसे उसने कोई कसूर किया हो। पर मा का दिल खुशी से भर आया। वह मुसकराई। उसने दूध का भरा लोटा उठाया और कहा, “चल बता, कहां है तेरा दोस्त!”

दिलीप ने तब खुशी की छलांग लगाई। मा-बेटे दरवाजे पर आए। अहमद उसी तरह खड़ा था। दिलीप ने हँसते-हँसते कहा, “अहमद! बाल्टी ला। जल्दी कर।”

दिलीप के लोटे का दूध अहमद की बाल्टी में क्या आया उसकी भौहब्बत अहमद के दिल मे समा गई।

मां ने पूछा, “तेरी मां बीमार है?”

“जी।”

“तो सेवैया कौन बनाएगा?”

“वही बनाएगी।”

“अच्छा, हमें भी खिलाएगा न?”

अहमद ने सिर हिलाकर कहा, “जरूर।”

मां हँस पड़ी। बोली, “भगवान् तेरी मा को जल्दी अच्छा करेगा। जा, घर जा। जल्दी आता तो और भी दूध मिलता।”

और फिर दिलीप का हाथ पकड़कर उसकी मां अंदर चली गई। उसका दिल बार-बार यही कह रहा था, “परमात्मा मेरे बच्चे का दिल सदा इसी तरह खुला रखे।”

उधर अहमद फूला-फूला घर आया। दरवाजे मे घुसते ही उसने पुकारा, “अम्मी! मैं दूध ले आया।”

फातिमा खिल उठी, “ले आया? बहुत अच्छा बेटा! कहां से लाया?”

अहमद खुशी से बोला, “अम्मी! बहुत देर हो गई थी। सब दूध बंट चुका था, लेकिन दिलीप ने अपनी मा से जाकर कहा और फिर वह मुझे इतना दूध दे गई।”

फिर एकदम बोला, “अम्मी! दूध थोड़ा तो नहीं है?”

“बहुत है, मेरे बेटे। इतना ही बहुत है।”

“हां अम्मी! सब दूध बंट चुका था। यह उसके अपने पीने का दूध था।”

“अपने?”

“हा, अपने और छोटे भाई के। जरा-सा रखकर सब उसने मुझे दे दिया।”

फातिमा का दिल भर आया। गदगद होकर बोली, “खुदा उसका भला करे। उसने गरीब की मदद की है।”

और फिर उन्होंने खुशी-खुशी ईद मनाने की तैयारी की। फातिमा का बुखार

हलका हो चला। उसने अहमद को नहलाया और कपड़े बदले। किसी तरह वह उसके लिए कुरता-पाजामा तो नया बना सकी थी, पर जूता पुराना ही था। उसे तेल में चुपड़कर चमका दिया और टोपी पर नई बेल टाक दी। अहमद खुश होकर बाहर साथियों में चला गया। नमाज पढ़ने जाना था और उसके बाद मेला भी देखना था। सबकी जेबों में पैसे खनखना रहे थे। सबकी आखे चमक उठी थीं। सबके मन उछल-उछलकर मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर जा पहुचे थे। अगरचे अहमद के पास बहुत कम पैसे थे, पर क्या हुआ, उसका दिल तो कम खुश नहीं था। कम होता क्यों, अम्मी ने उसे बताया था कि अब्बा दिसावर गए हैं बहुत रुपये लेने। अगली ईद पर लोटेंगे जैसे नियाज के अब्बा लौटे थे। यह क्या कम भरोसा था। इसी भरोसे को लेकर वह ईटगाह पहुचा। वहाँ उसने हजारों इनसानों को एक साथ नमाज पढ़ते देखा। उसके बाद उसने मेले की सेर की। चाट, मिठाई, फल, खिलौने सभी तरह की दुकानों की उसने पड़ताल की। उसने साथियों को झूलते देखा, पर कह तो सब कुछ अगले साल के लिए छोड़ चुका था। इसीलिए जो कुछ पैसे अम्मी ने उसे दिए थे उन्हे ठिकाने लगाकर वह घर लौट आया। देखा सेवैया बन चुकी हैं। गरम-गरम, लंबी-लंबी सेवैया उसे बड़ी खूबमूरत लगी। बीच-बीच में गोले की फाक पड़ी थी। शक्कर की बजह से दूध कुछ पीला हो गया था। उसका दिल बाग-बाग हो उठा। फातिमा ने प्यार से उसे देखा और कहा, “मेरे बच्चे। जा कटोरा ले आ और खाला के घर सेवैया दे आ। फिर ममू के घर जाना और फिर ।”

अहमद बोला, “सबके घर देते हैं?”

“हाँ बेटा। वे भी तो हमें भेजेगे।”

“अच्छा अम्मी, मैं अभी दे आता हूँ।”

और फातिमा ने दोनों कटोरों में सेवैया भरी और उन पर रूमाल ढक दिया कि कहीं चील झपट्टा न मार ले। अहमद पहले एक कटोरा उठाकर चला, लेकिन जैसे ही वह दरवाजे से बाहर हुआ उसे एक बात याद आ गई सेवैया सबसे पहले दिलीप के घर देनी चाहिए। उसने मुझे दूध दिया था, अपने हिस्से का दूध।

“बस, उसने अपना रास्ता पलटा। खाला के घर न जाकर वह दिलीप के घर की ओर चला। सोचने लगा, अम्मी सुनेगी तो बड़ी खुश होगी। बेचारी बीमार है। इसलिए दिलीप का नाम भूल गई। नहीं तो । यही सोचता हुआ वह खुशी-खुशी दिलीप के घर पहुचा। दरवाजा बद था। कुछ देर असमजस में सकुचा हुआ खड़ा रहा, फिर हिम्मत करके आवाज दी, “दिलीप!”

कोई नहीं बोला।

फिर पुकारा, “दिलीप!”

इस बार किसी ने जवाब दिया, “कौन है?”

और साथ ही कहने वाला बाहर आ गया। वह दिलीप का बड़ा भाई था। उसने

अबरज स अहमद को देखा आर पृष्ठा, क्या चाहते हों।

अहमद झिझका, फिर सभलकर बोला, "दिलीप हे?"

"नहीं।"

"उसकी मा?"

"मा? मा से तुम्हारा क्या मतलब?"

अहमद ने कहा, "मेरा नाम अहमद है। मैं दिलीप के साथ पढ़ना हूं। सबेरे उसने मुझे अपने हिस्से का दूध दिया था।"

दिलीप का भाई मुस्कराया। तब तक दिलीप की मा और चाची भी वहा आ गई थी। भाई ने कहा, "तो फिर?"

"जी सेवैया लाया हूं। इन्होंने (माँ को बताकर) कहा था कि "

अहमद अपना कहना पूरा करे कि दिलीप के भाई बड़े जोर से हँस पड़े, कहा, "भोले बच्चे। जाओ, अपने घर लौट जाओ।"

चाची बोली, "हम क्या तुम्हारी सेवैया खा सकते हैं? हमें क्या अपना ईमान बिगड़ना है।"

मा ने निहायत नरमी से कहा "बेटे! मैंने तुमसे मजाक किया था। हम तुम्हारे घर की सेवैया नहीं खा सकते।"

अहमद एकदम सकपका गया। उसके छोटे-से दिल पर चोट लगी। फिर भी उसन हिम्मत बांधकर कहा, "क्यों नहीं खा सकते? हमने भी तो आपका दूध लिया था।"

अब भाई ने उसे समझाया, "बच्चे। तुम बहुत अच्छे हो। परमात्मा तुम्हें खुश रखे। लेकिन हम हिंदू हैं, और हिंदू लोग तुम्हारे हाथ का छुआ खाना पाप समझते हैं।"

अहमद पाप-पुण्य नहीं समझता था। उसे हिंदू-मुसलमान के इतने गहरे भेद का अभी तक पता न था। वह सिर्फ दिलीप और उसकी मा की मोहब्बत की बात सोच रहा था। लेकिन यह बात सुनकर उसका दिमाग चक्करते लगा। वह खिसिया गया, और जैसे ही घर जाने को मुड़ा उसका हाथ कांपा। सेवैयों से भरा कटोरा जोर की आवाज करता हुआ वहीं उसी चौकी पर गिर पड़ा, जिस पर सबेरे-सबेरे दिलीप और दिलीप की माँ ने दूध के रूप में अपनी मोहब्बत अहमद के दिल में उड़ेल दी थी। सेवैया चारों तरफ फैल गई और अहमद की मोहब्बत पैरों से रौद्रे जाने के लिए वहीं पड़ी रह गई।

## इतनी-सी बात

### कैशव

साझा के साथे लबे होने लगे थे। बस के ड्राइवर ने अंदर की बत्तिया जला दी थीं। उस रोशनी में कुछ यात्री कुनमुनाए, कुछ पहले की तरह ऊघते रहे। कुछ ने अपने साथी यात्रियों पर दृष्टि डाली और फिर पहले की तरह आखें मीच ली। कुछ ही क्षण बाद बस में फिर स्तब्धता छा गई। बस, आते-जाते कुछ इकका-दुकका वाहनों की तेज आवाज उस सन्नाटे को चीर रही थी। उसके बाद फिर वही अपनी बस चलने की आवाज, वही झटकोले

कुछ ही क्षणों में हम एक सुनसान स्थान पर आ पहुंचे। और तभी वह अघटिन घट गया। एक कड़कती हुर्ठ कर्कश आवाज गूंजी—“ड्राइवर, बस रोक दो!”

इस स्वर की कर्कशता से सभी यात्री हक्कबक्का गए। दृष्टि उठी, उन्हीं के साथी यात्रियों में से सात व्यक्ति बस के चारों कोनों पर बंदूके, पिस्तौले और चाकू ताने खड़े हैं। उनकी दृष्टि की क्रूरता उनके पूरे बजूद को आवृत किए थी। तभी दूसरा व्यक्ति चिल्लाया, “ड्राइवर। अगर तुम इसी वक्त नहीं रुके तो मैं तुम्हे चाकुओं से गोद दूँगा।”

बस का स्वर किंच-किंच करता एकदम बंद हो गया। कर्कश स्वर फिर गूंजा, “सब सवारियां अपनी-अपनी जगह बैठी रहे और जो कुछ भी पास है, निकाल ले।”

और सबसे पहले उसने डॉ विनीता वर्मा से उसका पर्स झपट लिया। मेरे पास 500 रुपये थे, वे भी छीन लिए। कुछ ही क्षणों में उन्होंने किसी के पास कुछ नहीं छोड़ा। यात्री सब स्तब्ध जैसे किसी ने उन पर सम्प्रेहन कर दिया हो।

मुश्किल से तीस मिनट लगे होगे। डाकुओं ने सब कीमती सामान एक गढ़री में बाधा और नीचे उतर गए। जाते-जाते उनके सरदार ने आदेश दिया, “अब सब लोग आधा घंटे तक इसी तरह बैठे रहना।” यात्री तो मब जड़ हो चुके हो जैसे। मंत्रकीलित-से शून्य दृष्टि से देखते रहे। किसी ने भी उन्हें चुनौती नहीं दी। चुनौती का स्पष्ट अर्थ था मृत्यु।

और जीते-जी कोई भी आदमी मरना नहीं चाहता। हम सब इसी तरह खाली नजरों से उन्हे जाते देखते बैठे रहे कि तभी सहसा उनमें से एक डाकू का स्वर शून्य को कंपाता हुआ हमारे अंतर को चीर गया, “सरदार। इस खूबसूरत औरत के हाथ मे कीमती धड़ी है।”

सरदार की आवाज कड़की, “घड़ी खोलोगे तो देर लगेगी। उसी को उठा लाओ।”

पहले डाकू ने तुरत उस महिला के दोनों हाथ पकड़े और नीचे उतारने के लिए खीचने लगा, तभी वह भयानक सन्नाटा एकाएक भंग हो गया। डॉ. विनीता वर्मा ने भयातुर, कंपित क्षण-भर तो उस डाकू का प्रतिरोध करने का प्रयत्न किया फिर बुत बने सहयात्रियों की ओर याचना-भरी दृष्टि से देखा और करुण स्वर में बोल उठी, “मुझे बचाओ मुझे बचाओ।” और वह रो पड़ी।

उसके बच्चे का तो और भी बुरा हाल था। डाकू अदृहास कर रहा था। मां-बेटा जोर-जोर से रोते हुए उसी तरह गुहार कर रहे थे और हम सब डकैतों की तनी पिस्तौलों के डर से प्रस्तार-प्रतिमा की तरह मौन थे। मैं जानता हूं, हम सभी के भीतर तूफान थपेड़े मार रहा था। और मैं अनुभव कर रहा था जैसे किसी ने हम सबको अपने-अपने बैठने के स्थान पर कील दिया हो।

उसी क्षण उस आतंक और आर्तनाद में एक बार फिर आकाशवाणी की तरह एक चुनौती-भरा स्वर गूजा, “खबरदार। जो इस बहन को किसी ने छुआ भी। पीछे हट जाओ बरना...”

और इस दैवी स्वर के साथ ही मेरे पीछे की सीट पर बैठा एक तीस-बत्तीय वर्षीय युवक विद्युत को-सी गति से उस डाकू पर टूट पड़ा। और फिर गुत्थमगुत्था हो गए दोनों। तभी नीचे से सरदार की आवाज कड़की, “गोली मार दो साले को।”

बाक्य समाप्त होते न होते एक बदमाश की बंदूक गरजी और दूसरे ही क्षण न जाने कितने छर्ए उस युवक के शरीर में घुस गए। लहुलुहान होकर भी उसने उस लुटेरे को नहीं छोड़ा। दूसरे साथी उसकी मदद को आए। वे डर रहे थे कि बंदूक की आवाज सुनकर किसी भी क्षण आसपास के लोग या पुलिस आ सकती है।

इसलिए दूसरे ही क्षण वे सब तीर की तरह भाग खड़े हुए। डॉ. विनीता और उसका बच्चा अभी भी यह कहते हुए रोए जा रहे थे कि ‘ड्राइवर भैया इन्हें अस्पताल ले चलो, इन्हें बचाओ।’

पत्थर की मूर्तियों में जैसे प्राण लौटे। कुछ लोग तेजी से नीचे उतरे। सहेजकर उस युवक को बस में लिटाया। वह लगभग बेहोश था। कभी नजर उठती तो डॉ. विनीता वर्मा की ओर उठती फिर बेहोश हो जाता। डॉ. वर्मा उन बीते कुछ क्षणों में बुरी तरह टूट गई थी। वह किसी भी तरह कुछ भी करके उसे बचाने के लिए बार-बार प्रार्थना कर रही थी।

उस युवक का नाम किसी को नहीं मालूम था। जब तक बस चली वह पूरी तरह बेहोश हो चुका था। कुछ लोग उसके पास बैठे थे। कुछ चुपचाप उस अंधेरे में खिसक गए थे। मैं भी उन्हीं बहादुरों में था। मैं अपने अंतर में बहुत बेचैन था। पता

नहा बचेगा या नहा पर एक बार फर उसने प्रमाणित कर दिया कि इनसान अभी मरा नहीं

बस तेजी से आगरा की आर बढ़ रही थी पर मुझ अनबूझ पता नहीं था कि मैं हूँ भी या नहीं। हूँ तो कौन-सा मैं हूँ। मेरे सिर मे तो अनहद नाद की तरह ये शब्द तेज-तेज गूंज रहे थे एक मुसलमान ने एक हिंदू औरत की अस्मत की रक्षा की। इतने हिंदुओं के सामने एक मुसलमान ने एक मुसलमान ने एक मुसलमान ने एक हिंदू औरत की अस्मत की रक्षा की।

जितनी तेजी से ये शब्द गूंज रहे थे, उतनी ही तेजी से मैंने पाया कि मैं भाग रहा हूँ, दौड़ नहीं रहा, भाग रहा हूँ।

## डॉ. विनीता वर्मा

मुझे उनका नाम अस्पताल जाकर पता लगा, क्योंकि यह पुलिस केस था। कुछ यात्री भी रुके हुए थे। मैंने तुरंत अपने पति को खबर दी। वे परिवार के अन्य सदस्यों के साथ तभी आ गए। डॉक्टर ने पुलिस को बुलवा लिया था। उनके और मेरे बयान हुए। असलम जावेद नाम था उनका। उनके साथ बात करने को अभी डॉक्टरों ने मना कर दिया था। असलम जावेद रेलवे में इन्हों की देखभाल का काम करते थे। उस दिन अपनी ड्यूटी पूरी करके ईद मनाने आगरा अपने घर जा रहे थे। मुझसे दो वर्ष बड़े थे। उनके घर में उनकी पत्नी आयशा और दो छोटे बच्चे—सात वर्ष का गुल मोहम्मद और पाच वर्ष की नाहिदा थी। मैंने तुरंत एक साथी को उनके घर भेजा। सुनते ही उनकी पत्नी पापलों की तह रोती हुई अस्पताल आ पहुँची।

उसे लेने अस्पताल के बाहर मैं ही गई थी। उसने नजरे डठाई और मुझे देखा। मेरे लिए ही तो असलम भाई ने प्राणों का सौंदा किया था। मैंने आगे बढ़कर उसे अपने मे भर लिया, “भाभी, तुम्हारे शौहर के कारण ही मेरी अस्मत, मेरी जिदगी बच सकी है।”

आयशा ने भीगी नजरों से मुझे देखा, बोली “कैसे है वे? बच तो गए न।”

“बिलकुल बच गए। ऑपरेशन से डॉक्टर ने छोर बाहर निकाल दिए हैं। अब खून चढ़ाया जा रहा है। और यह भी अजीब संयोग ही है कि मेरे पति प्रो हरीश का खून तुम्हारे शौहर के खून से मैच कर गया।”

आयशा के मुख पर पहली बार मुसकान की आभा देखी मैंने। वह कुछ कह पाती कि डॉक्टर ने आकर कहा, “अब, आप उनके पास जा सकती है।”

प्यासे चातक-सी हम दोनों अंदर की ओर दौड़ीं कि तभी दो नर्सें पास से यह कहती हुई गुजरी कि एक हिंदू औरत की अस्मत और जिदगी बचाने के लिए एक मुस्लिम युवक ने अपने प्राणों को खतरे में डाल दिया, पर शुक्र है भगवान का कि अब

वह खतरे से बाहर है!

हम दोनों ने सुना। एक बार तो मैं काप गई। पर तब मैं 'मैं' कहा थी। आयशा के साथ भागती-सी अंदर पहुंची। आयशा का विचित्र हाल था। आँखों में आसू थे, चेहरे पर मंद-मंद मुस्कान। वह एकाएक अपने पति असलम जावेद पर झुक आई, बोली, "कैसे हो तुम। बहुत दर्द तो नहीं है। डॉक्टर ने क्या कहा? मैं तो बस, मर ही गई थी। वह तो इन आपा..."

मन एकाएक भर आया। चुपचाप सिर पर हाथ फेरती रही, फेरती रही। आयशा बस, देखे जा रही थी। उत्कुल्ल, गदगाद्.

जावेद भाई ने हम दोनों को देखा फिर आयशा की ओर देखकर कहा, "मैं ठीक हूँ, बिलकुल ठीक। इनके शौहर का खून चढ़ा है। अभी कुछ दिन तो यहाँ रहना होगा। तुम जरा भी फिक्र मत करना। देखभाल को मेरा एक और घर हो गया।"

"हा, हा, क्यों नहीं," मैं बोली, "मैं तुम्हारी बहन, वे तुम्हारे जीजाजी और हमारा बेटा तुम्हारा भाजजा। वह तो पागलों की तरह रो रहा है। यही बैठा है मगर तुम बोलो नहीं। भाभी, तुम भी यही बैठो धैया के पास। मैं बाहर उन सबको देखती हूँ। अभी यहाँ किसी को नहीं आने देना है।"

आने-जाने वालों का उस दिन तांता लग रहा था पर मैंने घर वालों, कॉलेज के और असलम जावेद के खास दोस्त व रिश्तेदारों को छोड़कर सबको कल आने के लिए कह दिया।

एक प्रौढ़ा अचरज से बोली, "देखो जी, कैसी माया है। एक मुसलमान ने हिंदू औरत की इज्जत और जान बचाई।"

एक डाक्टर ने दीर्घ सास ली, मुझसे बोला, "बहनजी, अच्छे आदमी हैं अभी भी धरती पर। मुसलमान होकर उसने आपके लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं की।"

एक मरीज खड़ा सुन रहा था, बोला, "क्यों बहनजी, क्या हिंदू भी थे बस में?"

एकाएक बजूद कांप गया मेरा, पर अपने को शांत रखते हुए बोली, "हिंदू क्यों नहीं थे! ज्यादातर वे ही थे पर डाकुओं की बंदूको, छुरो के आतंक से सब जैसे पत्थर के देवता बन गए थे। बस एक यही भाई..."

"हाँ बहनजी, देखो एक मुसलमान ने ही हिम्मत की।"

धीरे-धीरे सांझ के साये बढ़ने लगे थे। प्रो वर्मा अब पूर्ण स्वस्थ थे। वे घर जा सकते थे।

आयशा भी घर जाकर लौट आई थी। दोनों बच्चे गुल मोहम्मद और नाहिदा भी साथ आए थे।

"इन्हें क्यों ले आई रात को, भाभी!"

ये तो यादातर हँस्यूटो पर रहत हैं दाना राह देखत रहते हैं रात में इनक साथ रहने के लिए आज तो और भी परेशान हैं और कल तो ईद है न कई दिन से हगामा मचा रखा था। पर ये तो घर भी नहीं आ सके थे " कहत-कहते आखे भर आइ आयशा की ।

मैं समझ गई मन में दर्द भेरे भी उड़ा था पर मैं हँसकर बोली, "अरे भाभी ! तो क्या हुआ ? जहाँ भैया, वहीं घर। देखना, कल कैसे शान से ईद मनती है ।"

आयशा ने मेरी ओर देखा। मैंने मुसकराकर प्रो बर्मा से कहा, "आप जल्दी आइए, मुझे घर जाकर .."

प्राइवेट वार्ड का इतजाम प्रो बर्मा ने करवा दिया था इसलिए कोई परेशानी नहीं थी। मैंने जाते-जाते एक बार फिर आयशा से पूछ लिया, "कुछ चाहिए तो बता दो। मैं कल सबके आऊंगी। और सब भी आएंगे ।"

और हम चले आए। और सब भी चले गए थे। रह गए थे वे चारों।

नर्स आकर सब समझा गई। मैं द्वार तक पहुंची ही थी कि एक पुरुष ने मुझे दिखाकर अपनी पत्नी से कहा, "ये ही हैं वे डॉ विनीता। इन्हीं के लिए उस मुसलमान ने अपनी जान खतरे में डाली ।"

पत्नी बोली, "आदमी जैसा काम किया उसने। हिंदुओं ने तो अपनी मर्दानगी का मुह काला कर ही दिया था ।"

बार-बार सुनती मैं। कुछ कसक जाता अंतर में तो गेने-रोने को हो आती कि इसमें हिंदू-मुसलमान की बात कहाँ से आ गई!

तभी कांप उठी मैं स्वयं, 'अनजान क्यों बनती हो ! हम लोगों में क्या यही बात महत्वपूर्ण नहीं है। जात-जात-जात । जैसे हम जात के अलावा और कुछ नहीं। मा-बाप, भाई-बहन, दोस्त. कहीं कुछ नहीं, इनसान कुछ नहीं ।'

मैं विमूढ़, अबूझ-सी चली जा रही थी, तभी कानों में तेज आवाज गूंज उठी, "आज की सनससीखेज खबर। रात एक बस पर डाकुओं ने हमला किया ।"

मैंने तुरत अखबार खरीदा। बहुतों ने खरीदा। वह आवाज लगाता आगे बढ़ गया। मैं पढ़ने लगी : "लुटेरे यात्रियों का सारा माल लूट ले गए। डॉ. विनीता भी उसी में थीं। उन्हें भी मारा। वह और उनका सात वर्षीय बेटा मदद के लिए चिल्लाए। उनकी मदद के लिए कोई आगे नहीं आया। लकिन एक मुसलमान युवक गोलियों की परवाह किए बिना डाकुओं से गुत्थमगुत्था हो गया। डाकुओं ने गोली मारकर उसे घायल कर दिया पर शोर हो जाने के कारण पकड़े जाने के भय से वे भाग खड़े हुए। उस युवक का नाम असलम जावेद है। वह रेलवे में इंजीनियर है। डॉ. विनीता लोगों की मदद से उसे आगरा अस्पताल लेकर आई। खबर पाकर उनके पति भी आ गए। असलम जावेद नाम का वह युवक अब खतरे से बाहर है। एक मुसलमान ने इनसानियत की जो

मिसाल कायम की है, वही हमें अधेरे से बाहर लाएगी।"

खबर पढ़ चुकी तो लगा काश मवाददाता ने मुसलमान शब्द का प्रयोग न किया होता।

## असलम जावेद

अगले दिन मेरी तबीयत और भी ठीक हो गई। इतने लोगों का आना मायने रखता है और आज तो ईद का दिन है। अस्पताल का यह प्राइवेट वार्ड विनीताजी ने किसी शादी वाले घर की तरह जगभगा दिया। मैं तो देखता ही रह गया। विनीता ने भोर के तड़के आते ही यहां का भार मभाल लिया। आयशा और बच्चों को घर भेज दिया। साथ मे जो सामान लाई थी उसे भी सभलवा दिया, "देखो भाभी, आज मेरी एक बात रखनी पड़ेगी। मैं जो कपड़े लाई हूं उन्हे ही पहनना एक बार। चाहे फिर उतार देना। और सेक्वेयां जरा जायकेटार बनाना, मैं भी बनाकर लाई हूं।"

चकित-विसृष्टि आयशा बोल उठी, "आप क्या सारी रात काम करती रहीं?"

"सच भाभी, रात काम करने में जो मजा आया, बता नहीं सकती बस, अब एक शब्द नहीं। जल्दी जाइए, बाहर गाड़ी खड़ी है।"

"गाड़ी?"

"हा, वह गाड़ी हमारी ही है। न, न, रात नहीं खरीदी। बहुत पुरानी है सैकड़ हैं।"

आयशा खिलखिला पड़ी, "आपा, आप तो बस "

"बस नहीं, घर जाइए। वे आने वाले होंगे। मेरी मा भी आई है।"

मैं तो बस, देखता ही रहा। विनीता बोलने ही नहीं देती थी। पर अदर जो शौर मचा था, जो घमासान मचा था, उसे वह शायद ही जानती हो।

उसके बाद दो जश्न मने। एक मेरे घर पर और एक यहा अस्पताल में। मैं जानता हूं, आज आयशा ने जी-जान से सजाया होगा घर को। मैंने तो बाद में देखा। विनीता आपा का लाया सामान देखकर वह तो देखती ही रह गई थी। उसके लिए कैसी बढ़िया रेशमी साड़ी, बच्चों के लिए ड्रेस, कुरता-पायजामा-टोपी, बिटिया का लहगा-चुन्नी, कानों के बुदे। बेटे का जूता भी खूब चमचमाता हुआ। दौड़-दौड़कर सब दोस्तो, रिश्तेदारों को दिखाते नहीं थक रहे थे वे दोनो। ढेर सारी भिठाई, फल, सेक्वेया। आयशा को बहुत कम चीजे बनानी पड़ी थी। बच्चे नमाज पढ़ने चले गए थे। बच्चों के मामा उन्हें अपने साथ ले गए।

नर्सों की मदद से मुझे नए कपड़े पहनाए गए। सच तो यह है कि इतनी खुशी मे दर्द भी हँस पड़ा था।

सबने आकर अपने कपड़े दिखाए। आयशा दस्तरखा। का इतजाम करती रही।

मेरे कमरे मे बहुत कम लोग थे।

नमाज के बाद, खाने से पहले, विनीता सबको मेरे कमरे मे बुला लाई, बोली,  
“सब बैठ जाए। अब मेरी ईद शुरू होती है।”

और उसने एक बहुत सुंदर चाढ़ी की तश्तरी निकाली। उसमे चावल और रोली  
रखकर पानी मिलाया। फिर एक सुंदर दिप-दिप करती राखी निकाली। मेरे माथे पर  
टीका किया, बोली, “हाथ बढ़ाओ।”

आयशा पास बैठी थी, जानती थी कि क्या करना है। उसने मेरा हाथ उठाया तो  
विनीता ने वह सुंदर गर्खी उस पर बांधकर मुसकराते हुए कहा, “अब बहन की  
हिफजत का भार भाई पर है। पर उसने तो राखी बाधने से पहले ही अपना फर्ज निभा  
दिया। ईश्वर मेरे भाई को खुशियो से भरी लबी जिंदगी दे।”

फिर उसने आयशा की ओर देखा, “तुम्हे खाली नही जाने दूगी। तुम्हारे माथे पर  
यह बिदिया चमकेगी।”

और उसने एक बहुत ही सुंदर बिदिया उसके माथे पर चिपका दी। सचमुच  
आयशा का सुंदर चेहरा और हजार गुना दमक उठा था। विनीता ने हँसते हुए आईना  
उसक आगे कर दिया। आयशा ने आंख उठाई तो वह टो बच्चो की मा, पागल-सी  
अपने ही चेहरे को किसी अजनबी की तरह देखती रह गई।

विनीता बोल डठी “भाभी बस, बस! अब जरा भइया को दिखाइए।”

आयशा लजा गई। सब खिलखिला पड़े। पर मैं तो सचमुच देख रहा था, देखता  
जा रहा था। जरा-सी बिदिया की बजह से

तब तक विनीता ने दोनों बच्चो को भी गर्खी बांध दी थी। फिर सबको मिठाई  
दी कि तभी उसे पति आ गए। बोले, “कुछ पत्रकार है। असलम भाई से दो-चार  
सवाल पूछना चाहते हैं। पुलिस भी आई है। उसे भी कुछ पूछना है।”

मैं चौक पड़ा, “मुझसे?”

“बस दो. चार ..मैंने डॉक्टर की इजाजत ले ली है।”

“तब ठीक है, पर मैं ”

“अरे, भाई डरो नही। जो कुछ हुआ, सब बता देना।”

और वहा सहसा सन्नाटा-छा गया। सब संभलकर बैठ गए। चार पत्रकार आए  
और चार ही पुलिस वाले।

मुझे कुछ समझ नही आ रहा था। मुझसे प्रश्न किया गया, “हम जानना चाहते  
है कि आपने मुसलमान होकर एक हिंदू नारी के लिए अपनी जिदगी को जान-बूझकर  
दाव पर लगा दिया, क्या सोचकर? कैसा लग रहा था तब आपको?”

मैंने सवाल सुना। कई क्षण अपने विचारो को बटोरता रहा, फिर बोला, “सारी  
कहानी आप पढ़ और सुन चुके हैं देख भी रहे हैं। मुझे बस, वही कहना है जिसके

बारे मेरे सिवाय और कोई नहीं जानता। जिस वक्त दरिद्रों ने इन बहन को खीचना और मारना शुरू किया और ये और इनका बेटा जोर-जोर से रोते हुए हर किसी से मदद के लिए गिडगिडाने लगे, उस वक्त जैसे एकाएक बादल गरजे हो और बिजली कड़कड़ाई हो। अचानक मेरी आँखों के मास्ने मेरी उस छोटी बहन का लहूलुहन कटा-फटा बदन आ खड़ा हुआ, जो दो बर्ष पहले इद के ही दिन ऐसे ही एक हादसे में मारी गई थी। उसे देखते ही मैं थरथराया, कांपा और चीख उठा—“मेरी एक और बहन नहीं मरेगी . ।”

तभी एकाएक मैं बुरी तरह हाँफने लगा। तब एक ओर से विनीता ने, दूसरी ओर से आयशा ने मुझे सभाला। उनके आसू टप-टप मेरे ऊपर एक माथ गिर रहे थे।

मैंने दोनों को परे हटाते हुए पत्रकारों और पुलिस की ओर देखा। कहा, “बस, इतनी-सी बात थी जिसका फसाना कर दिया आप लोगों ने।”

## मुरब्बी

गाव के ठीक बीचोबीच उसकी दुकान थी। चारों तरफ नाना रूप टोकरिया सजाकर बीच में एक चौकी पर वह शहनशाह की तरह तनकर बैठते थे। चेहरे की झुरिया बुढ़ाये की साक्षी देने लगी थीं और कहीं चोट खाकर एक पेर भी कुछ लगड़ा गया था। लेकिन आवाज की कड़क सदा आयु को धोखा दे जाती थी। हर दीवाली के दिन वह सबसे पहले जलेबियों का टोकरा लेकर भंगियों की बस्ती में पहुँचते थे। घर में जब कभी विवाह-शादी अथवा पुत्रोत्सव का अवसर आता तो सबसे पहले वह गाव के भगी-चमारों को दो-दो आने देते थे। हाथ से दान और मुंह से गाली देने में उनका सहज विश्वास था। हर गाली के साथ, 'राम थारा भला करे' कहना वह कभी नहीं भूलते थे। इसी शक्ति के बल पर वह गाव के मुरब्बी बन गए थे।

उस दिन पैठ का दिन था। छोटा-सा बाजार भीड़ से गुलजार था। चारों ओर से उठती आवाजों और धूल के कारण बातावरण में एक धुंधली गूँज पैदा हो आई थी। सहसा भीड़ में से किसी ने कहा, "मका राम-राम, नदू चौधरी। किंधे चले?"

चौधरी ठिठके फिर हँसकर बोले, "ओहो, शेखजी दिक्खे हैं। अजी, लौडिया के हाथ पीले करने हैं। सौदा-सुलफ लेने आया हूँ। तम सुनाओ, किंधे जाओ हो!"

शेखजी कुछ जबाब दें कि उस पार अपनी चौकी पर बैठे हुए मुरब्बी एकाएक पुकार उठे, "नदू भाई, नदू भाई होत। अरे मका मुनेगा भी, यार। यहाँ तो आ जरा।"

किंधे पर चादर डाले नदू चौधरी ने मुरब्बी को देखा। फिर पास आकर कहा, "राम, राम, मुरब्बी! दिके तुमको ही देक्खू था। लौडिया का व्याह है ना, बरतन चाहिए।"

मुरब्बी ने गहरी आत्मीयता से कहा, "हाँ, हाँ, क्या डर है। अभी चलता हूँ और कपड़ा नहीं लेंगे? राम थारा भला करे, तमाखू, चावल।"

नदू कुछ उत्तर दे कि इससे पहले ही श्रीधर पांडे आ पहुँचे। बोले, "मुरब्बी बढ़िया चावल चाहिए पांच सेर, क्या भाव है?"

जैसे किसी ने गाली दे दी हो, "क्या कहा, भाव? दिको घर वालों से भी कही भाव-ताव हो है। मगल, ओ मंगल, अबै हराम के खाने वाले, सुनै नहीं। पीलीभीत वाला चावल तो ला। गुरु आए हैं। हाँ, हाँ, वही कोने वाली बोरी में हैं।"

पांडेजी बोले, "अजी मुरब्बी! पहले भाव बताओ।"

मुरब्बी मुड़े, "तो साफ-साफ कह दूँ। राम थारा भला करें, ढाई पा कम तीन

सेर का भाव है। लेकिन आपके लिए आधा पा कम तौल दूगा औहो, हाजी करीमुद्दीन दिक्खे हैं, मलाम हाजीजी। खडे क्यू रह गए? इधं बैठो ना। बढ़िया बासमती दिखाऊ?"

हाजी साहब ने कहा, "बस, एक बार दिखा दो। बार-बार की बात मुझे अच्छी ना लगे।"

मुरब्बी के जैसे किसी ने चाटा मारा। तमक्कर बोले, "तुमने क्या बात कही, हाजी साहब। कभी खोटा माल दिया है क्या?"

हाजी साहब बोले, "नहीं, नहीं, यह मैंने कब कहा।"

मुरब्बी ने उसी स्वर में कहा, "और केसे कहोगे? दिके थारे सहारे दुकान पै बैटा हू। पूछ लो गुरु से जो कभी उलटी बात कही हो। यह देक्खो, यह है बासमती देहरादून का। सुंधो जरा। खुशबू है, खुशबू। कहे देता हूं कि कढाव मे डालते ही गिरह भर की न हो जाए तो नाम बदल देना। राम थारा भला करे।"

हाजी साहब ने सूंधते हुए कहा, "खुशबू तो है पर कुछ नई "

मुरब्बी फिर तिनक उठे, "क्या कहा? नई मालूम दे रही है। वही बात है। जैसी रुह, वैसे फरिश्ते। दिके हाजी साहब, दस साल से तो मेरी दुकान मे पड़ी है। ऐसी बासमती तो दीवा लेकर ढूँढ़ो तो भी ना मिले। राम थारा भला करे, तुम हागे तीस-पैतीस के। जब थारे अब्बा जीवे थे, क्या नाम था उनका, बडे भले थे, क्या मजाल कभी दूसरी दुकान पै पैर रखा हो। दिके एक दफे माल नहीं आया था तो बोले। 'मै तो दूसरे की दुकान का रास्ता ही नहीं जानता।' तब चचा खुट बाजार से सौदा लाए। और तुम कहो कि बासमती नई है। यह चालबाजी थारे साथ करूगा। मूँछ मुँडा दूगा कि कोई हराम का खाने बाला कह तो दे, बासमती पुरानी नहीं है। राम थारा भला करे, वह बात है .."

इसी ब्रीच मे देवी खाना खाने के लिए कहने आ गया। बस, उबल पड़े, "खाने की पड़ गई अभी से। हगम के खाने वाले। देखता नहीं कि दम मारने की फुरसत नहीं। जाकर कह दे कि खाने बिना काम नहीं अटकेगा। मै उड़ा तो शादियां अटक जाएंगी।"

पाढ़ेजी हँसकर बोले, "लेकिन मुरब्बी, जीने के लिए तो खाना जरूरी है।"

उसी गहन गभीरता से उन्होंने उत्तर दिया, "तो भी गुरु, साँझ तक रुके रहने मे कोई हर्ज नहीं है। राम थारा भला करे, यमराज को अभी मेरी जरूरत नहीं है। उसके कौन-सी औलाद बैठी है जो शादी रचानी पड़े।"

एक कहकहा लगा और फिर धीरे से गायो के खुरो के साथ अधकार बिखेरती सध्या ने उस गांव मे प्रवेश किया। मुरब्बी काफी थक गए थे। पैरो की नसे सुन पड़ गई थीं। उन्हे सहलाते हुए मगल से बोले, "ओफ्फो भाई, अब जान मे जान आई। गम थारा भला करे, जैसे सारी दुनिया की शादिया इसी बार होंगी। खाना-पीना भी हराम हो गया। अच्छा, अब दुकान बढ़ाना शुरू कर। अरे, देवी। ओ देवी, दीवा तो जला ला।

दिके इस आल म रखा ह

बोलते बोलते रूपये पैसो का ढेर सामने लगा लिया कहा हराम के खाने वाले कहवे हैं कि मुरब्बी इतना कमावें, कुल जमा सो रूपये भी तो नहीं आए दिक्खे क्या बचेगा? राम थारा भला करे, मुश्किल से दस रूपये। औरे हा, देवी, औं देवी, दलाली का क्या रहा? कितनी दफा कहा, पैसे के मामले में यकीन नहीं किया करे, पर समझ मे ही नहीं आवे। राम थारा भला करे, कब समझोगे? क्या कमा के खाओगे? मका बिज्जू की तरह क्या देखे, जाके ला।"

वह गया ही था कि छोटा लड़का राधे आ गया। बोला, "चच्चा, मै कल शहर जाऊंगा।"

"तो फिर?"

"फिर क्या? तमस्सुकों की मयाद गली जा रही है। नालिश करनी पड़ेगी। कोई साला ले के ना दे है। जरूरत के बक्त ऐर पकड़ लें और फिर तोते की तरह आख फेर लें।"

मुरब्बी ने कहा, "सब सालो पै दाबा ठोकना चाहिए।"

राधे बोला, "दाबा तो ठोकूगा ही, पर उनमे एक तमस्सुक मुनब्बर का भी है। थारा यार-बास है, कल को कहोगे कि पूछा भी नहीं।"

मुरब्बी के मुख पर सहसा कितनी ही हलकी-गहरी परछाइयाँ तेजी से उभरी लेकिन तुरंत ही धुंधला गई। उसी सहज कड़क के साथ जबाब दिया, "उसमें यार-बास क्या करेगा? राम थारा भला करे, रूपया लिया है तो देना होगा। नहीं तो नालिश करनी होगी।"

राधे बोला, "तब कल जाकर बकील को कागज दे आऊंगा।"

लेकिन जैसे ही उमकी पीठ फिरी, मुरब्बी जैसे चीख उठा, "ऊँ हूँ थारा यार-बास है. कहोगे पूछा भी नहीं पूछकर क्या कर लिया। मुझसे कहलवाना चाहता था? शर्म नहीं आई हराम के खाने वाले को। बाप से भी छल करे, लाला को पता नहीं कि मै उसे तब से जानूँ हूँ जब लाला पैदा भी नहीं हुए थे। गरीब किसान खेती करके पेट पाले है, ऐसा यार-बास कि झूठमूठ भी काम का पता लग जाए तो दिके भाग जावे। परार साल गंगा माई चढ़ आई थी, सब घाट बहा ले गई। पानी इतना गहरा कि हाथी डूब जाए। राम थारा भला करे, मदर का कुआं उसी ने अपने हाथों से खोदा था। बोला—'वही हाथ अब भी हैं। रही जान की बात सो हाथ में नहीं, मन मे हो'"

मंगल ने धीरे से कहा, "अब तो रोटी ले आऊं?"

वह चौक पड़े, "क्या कहा? हाँ, हाँ, ले आ। सवेरे का भूकका हूँ। देख परांठों में अजबायन डलवा देना और हाँ, चूरन लाना मत भूल जाना। औरे मेरे यार चला जावे है। बात तो सुन लिया कर दिके मुनक्का खतम हो गई, लेते आना। भूलना मत। अब खड़ा-खड़ा क्या देखे है। राम थारा भला करे, जा, दौड़ के जा!"

मंगल गया तो घास वाली ने आवाज दी, “मुरब्बी! घास नहीं लोगे?”  
एकदम जवाब दिया, “नहीं।”

और जैसे दूसरे ही क्षण कुछ याद आ गया हो पुकार उठे, “घास वाली! अरी  
ओ घास वाली! सुनती नहीं। एक ही गढ़ी है?”

घास वाली ने वहीं से जवाब दिया, “आजकल घास मिले कहा। ये ही मुश्किल  
से लाई हूँ। पेट तो भरना है। राम बरसता ही नहीं।”

“बरसेगा, जरूर बरसेगा। और राम क्या करें, करम भी तो हम खोद्दे करने लगे  
हैं। उसका कोष ही तो है कि जानवरों के लिए घास नहीं। जा, जा, डाल जा। राम थारा  
भला करे, लौटती बार पैसे ले जाना।”

घास वाली गई तो देवी की ओर देखकर बोले, “देखा देवी, न्यार की कितनी  
मुसीबत है। अब की बार मुनब्बर के खेत में कुछ नहीं हुआ, नहीं तो क्या वह न्यार  
पर पैसे डालने देता। क्या हुआ जो रूपये नहीं दिए। अरे, तमस्सुक पलट देता, पर मैं  
तो कहूँगा ही नहीं। क्यों कहूँ?”

मंगल खाना लेकर आ गया तो पैसे संभालने का भार देवी को सौंप दिया।  
खाते-खाते इधर-उधर मुस्तैद कुच्चों को पुकारने लगे, ‘तो तो तो ले ले, अरे, ले  
भी। वह देख, वह तेरे पा के पीछे पड़ा है। हट.. हट, अरे परे हट, बस, वही वही  
खड़ा रह।’

यह लुका-छिपी चल रही थी कि मुनब्बर आ गया। सिर पर मोटा साफा, बदन  
पर फटी मिरजई और घुटनों तक की धोती और आंखों में निरीहता। बोला, “रोद्दी खा  
रहे हो, मुरब्बी! बहुत देर कर देते हो।”

मुरब्बी ने जवाब दिया, “आजकल तो यही रोना है, भाई। ब्याह न जाने किस-  
किसके होंगे, पर मुसीबत मुझे उठानी पड़े।”

मुनब्बर हँस पड़ा। फिर दो क्षण तक कोई किसी से नहीं बोला। मुरब्बी ने ही  
वह चुप्पी तोड़कर पूछा, “कैसे आए थे?”

एक क्षण सोचते हुए मुनब्बर ने जवाब दिया, “सुना है, छोटे लाला नालिश करने  
जा रहे हैं। इस फसल रुक जाते तो..”

मुरब्बी ने जोर से हुंकारा भरा। कहा, “तो?”

मुनब्बर उसी तरह बोला, “दिके, तुम उसे जरा कह देखते।”

मुरब्बी ने एकदम जवाब दिया, “मैं कहूँ? नहीं। मैं कुछ नहीं कहता! राम थारा  
भला करे, मैं किसी के झगड़े में नहीं पड़ता।”

मुनब्बर सहसा हतप्रभ-विमूँढ बोल नहीं सका। एक क्षण की थका देने वाली  
स्तब्धता के बाद मुरब्बी ने ही फिर कहा, “लेकिन तू रूपये दे क्यों नहीं देता?”

मुनब्बर धीरे से इतना ही बोला, “ये तुम कहोगे? होते तो क्या नहीं देता?”

मुरब्बी ने फिर दृष्टि उठाकर उसे देखा और निर्लिप्त भाव से कहा, “तो मैं क्या

करूँ? मगल, ओ मगल! पानी ला भाई और ये बगतन हटा।''

और फिर पानी पीते-पीते बोले, ''देख, कही से कुछ हो सके तो किसी तरह से कुछ रूपये दे जा। बात टल जाएगी।''

मुनब्बर ने कुछ कहना चाहा, पर 'मुरब्बी' के अतिरिक्त मुंह से कुछ निकला ही नहीं। जैसे दिल कुछ ठड़ा होने लगा हो। कुछ देर शन्य में खोया-खोया सिर झुकाए खड़ा रहा और फिर चुपचाप चला गया। उसके जाते ही मुरब्बी ने तेज होकर मंगल से कहा, ''गया तो जाने दे। हाँ, जरा देख के पानी डाल। दिन-भर हाथ-मुंह धोने की कुरसत नहीं हो, कितने गंदे हो गए हैं। और राम थारा भला करे, आज तो आख भी कड़वा रही है। घर जाकर बड़ी वहू से सुरमा ले आना। राम थारा भला करे, समझ गया न?''

मगल ने अनमने भाव से पूछा, ''आज ही लाए?''

और भी तेज होकर बोले, ''और क्या कल लाएगा। आंख तो आज कड़वा रही है। हराम के खाने वाले, तुमसे कुछ नहीं होता। जरा-जरा- सा काम भी कह के करवाना पड़े। बैठ यहीं, मैं खुद जाता हूँ। कहा गया बो देवी? सब माले भाग जाते हैं। किसी का काम मे जी नहीं लगे। मेरी लकड़ी कहा है? दिके बिछौना बिछा देना और जो बचा-कुचा सामान पड़ा है, उसे भीतर रख देना। राम थारा भला करे, दिके खाली मत बैठना।''

फिर उठते-उठते बोले, ''और खाट के पास पानी रख देना। थैली तकिए के पास। राम थारा भला करे। अबे, मुनब्बका ले आया था और चूरन?''

मंगल ने जवाब दिया, ''जी हा, सब ले आया था।''

''तो मैं अभी आता हूँ।'' यह कहकर मुरब्बी घर की ओर चले गए। बहुत दूर नहीं था। लेकिन रात का सन्नाटा उस बड़े गाव को अपने अंतर में समेट चुका था। जैसे आधी रात बीत गई हो। कही कोई कुत्ता भौक उठता या दूर गीदड 'ह़ा-ह़ा' करने लगता। आकाश मे कोई तारा टूटता और कहीं हुक्का गुडगुड़ाने की आवाज होती। कभी कोई अकेला आदमी तेज-तेज कदम निकल जाता तो कभी दो-तीन व्यक्ति जोर-जोर से बोलते हुए सन्नाटे की नीद हराम कर देते। क्षणिक तूफान की तरह सारा बातावरण अजीब-सी सोधी-सड़ी गंध से भरा था। देवी की माँ घर के भीतर के दलान मे बैठी सूत अटेर रही थी। आयु पैंतीस वर्ष के आसपास, लेकिन देखने में तीस की भी नहीं लगती थी। सदा मुसकराती और काम में लगी रहती। देवी को आया देखकर उसने पूछा, ''आज गया तू? तेरे बाबा ने खाना खा लिया?''

देवी ने जवाब दिया, ''खा रहे थे। पर भाभी। आज उनकी तबीयत कुछ खराब है। बहुत देर तक आप ही आप बोलते रहें।''

प्रभा हँस पड़ी, ''अरे, यह तो उनकी आदत है।''

देवी ने रहस्य की बात बताने की मुद्रा में कहा, ''ना, भाभी। आज तो उनकी

आखो मे पानी आ गया था। बार-बार मुनब्बर की बाल करे थे। शायद चच्चा के उस पर रूपये चाहिए।”

निमिष भात्र मे जैसे सब कुछ पारदर्शी हो डटा। बोली, “तो ये बात है। मैं जानू हूँ। तेरे चाचा विष की गांठ है। नालिश-वालिश की बात होगी।”

सहसा उसी समय दूर से खट-खट की आवाज पास आती चली आई। उसी के साथ बहता चला आया एक स्वर, “बेट्टी, ओ बेट्टी।”

प्रभा हड्डाकर उठी, “तेरे बाबा दिक्खे हैं। जरूर कोई बात है। बिना बात वह घर नहीं आने। तीज-त्यौहार या बीमार होने पर ही आते हैं।”

तब तक मुरब्बी पास आ गए थे। प्रभा ने पूछा, “कैसे आए? तबीयत तो ठीक है?”

एक पल वह चुप खडे रहे। फिर बोले, “दिके बेट्टी, मेरी गल्लक में कितने रूपये हैं?”

प्रभा ने अचकचाकर उनकी ओर देखा, “अभी परसों ही तो आपने सौ रूपये मगवाए थे। हाथ खुला रखने पर क्या रुपया जुडे हैं।”

मुरब्बी जोर से हँस पडे, “राम थारा भला करे, बेट्टी। वो बात है कि हाथ खुला रखने तो जुडे नहीं, बंद रखने तो जर लग जाए।”

“लेकिन इस बक्त आप रुपयों का क्या करेगे?”

“अब दिके, क्या बताऊ? मुनब्बर ने राधे से तीन सौ रुपये लिए थे। चुका नहीं पाया। चुकाने चाहिए। पर फसल खराब हो गई। राम थारा भला करे, गरीब है। अब तमस्सुक की मर्यादा गली जा रही है।”

प्रभा बोली, “तो क्या हुआ! तमस्सकु बदला नहीं जा सके?”

मुरब्बी ने धीरे से कहा, “सके तो है, पर कहे कौन? राम थारा भला करे, उसने न माना तो? वो बात है कि नादान की दोस्ती जी का जंजाल। सोच्चूं हूँ, क्यों झगडे मे पड़ूँ, पर वो भी तो बक्त-बेक्त हाथ बांधे हाजिर रहे। राम थारा भला करे, गाय कैसी असील खरीदवा दी। चाहे बच्चा दूह ले। खिलाई अच्छी होगी तो आठ-दस सेर दूध ले लेना।”

बोलते-बोलते वे जैसे कही खो गए। स्वर धीमा पडता गया। कहा, “दिके, जब मैं फेरी लगाऊं था तो यही एक आदमी था जिसने मदद दी थी। महीनों इसकी झोपड़ी मे दुकान लगाई। राम थारा भला करे, बेट्टी, हराम का खाने वाले, ये क्या जाने। वो बात है, जिसके पैर न फटे बिखाई, वो क्या जाने पीर पराई।”

प्रभा ने पूछा, “आपको कितने रुपये चाहिए?”

“अभी तो सौ से काम चल सकता है। दिके बेट्टी, तेरी सास के बक्स मे गुलुबंद पड़ा होगा।”

प्रभा एकाएक आपादमस्तक सिहर उठी, “वो तो भाभीजी का है। उसका आप

क्या करगे? ठहरए म अभी आई

मुरब्बी ने बैठते बैठत कहा हा हा बैट्टा हू तू गुलुबंद ले आ राम थाग भला करे, किसी से कहने की जरूरत नहीं है।

वह तब तक जा चुकी थी। लंबी सांस लेकर कई क्षण मुरब्बी अपने-आप से बातें करते रहे, बड़बड़ाते रहे। जब लौटकर आई तो वह एकाएक चौक पड़े, “राम थारा भला करे, ले आई गुलुबंद?”

प्रभा ने शांत स्वर में कहा, “जी गुलुबंद तो नहीं, सौ रुपये हैं। मेरे पास थे। जब आपकी गुल्लक मे हो जाएगे तो रख लूंगी।”

मुरब्बी हतप्रभ, अनबूझ सहस्र युगो जितने एक पल में उसे देखते रहे। जब संज्ञा लौटी तो पुकारा, “बेटी!”

लेकिन प्रभा तो अब वहाँ थी नहीं। राधे था जो तेजी से आता हुआ सहसा उनसे टकरा गया था। एकदम बोला, “चच्चा तुम यहाँ? मका जी तो ठीक है?”

मुरब्बी ने एकाएक अकड़कर कहा, “जी साला कहा जावे? वो तो तेरा ही पता नहीं लगे। ले संभाल, बुढ़ापे मे इस मुनब्बर ने जान आफत मे डाल दी है।

राधे हतप्रभ-सा बोला, “दिके, समझा नहीं।”

मुरब्बी ने और भी शेर होकर कहा, “समझने की इसमे क्या है? नालिश करने को जा रहा था न, वही सौ रुपये दे गया है। बहुतेरा कहा कि मुझे बीच में न फांस, पर तेरे सामने आते ही उसकी नानी मरे। अब भाई गिन ले। किसी साले का एतबार नहीं। राम थारा भला करे, मैं चला।”

और यह कहकर वृद्ध मुरब्बी लकड़ी से खट-खट करते हुए वहा से चले गए। अक्खड़ राधे भौंचक कभी रुपयों को देखता कभी उनके जाने की दिशा की ओर। खट-खट की आवाज निरतर धीमी पड़ रही थी, लेकिन अंतर का तूफान उतना ही तीव्र होता आ रहा था।

## सफर के साथी

आजकल सफर करना भी कोन चाहता है, पर अक्सर बात ऐसी बन जाती है कि इनसान मजबूर हो जाता है। इसलिए जब मैं स्टेशन पर पहुंचा तो अपनी मजबूरी पर काप-काप आया। मालूम हुआ कि कलिक भगवान् अवतार लेकर इसी ट्रेन से पधारने वाले हैं, क्योंकि सारा नगर उनका अभिनंदन करने के लिए वहाँ मौजूद था। मैंने किसी तरह अगली पक्षित मेरे आकर सांस ली तो बेतहाशा मेरे मुँह से निकला, “इत्ते आदमी !”

तभी मेरे पास खड़े एक सज्जन बोले, “अभी से। अभी तो जनाबे वाला, गाड़ी आने में दो घटे की देर है।”

“दो घटे ?”

“जनाबे वाला !”

“आप गलती पर हैं। एक्सप्रेस पौने नौ बजे छूटती है और अब साढ़े आठ बजे हैं।”

“साढ़े आठ,” वे अचकचाए और फिर फुती से जेब से घड़ी निकालकर बोले, “लाहौल बिलाकूबत। मेरी घड़ी में सात बजे हैं। शायद बंद है, अजीब मुसीबत है, जनाब ! पूरे तीन घटे से स्टेशन पर मौजूद हूं।”

मैं हँस पड़ा, “माफ करिए, आप शायद गाड़ी मिस कर गए हैं। इससे पहले मेल जा चुकी हैं।”

वे भी हँसे, “बेशक, बेशक आप ठीक फरमाते हैं, लेकिन आपने मेल देखा नहीं है। एक की जगह पर तीन मुसाफिर बैठे थे। और ऊपर से मजा यह कि उनकी गोदियों में भी लोग तशरीफ रखते थे।”

वे आगे कुछ कहते कि भीड़ में एक कोलाहल उमड़ पड़ा। अनेक कठ एक साथ पुकार उठे, “गाड़ी आ गई,” “गाड़ी आ गई।” अब क्या था, एक तूफान पैदा हो गया। मुझे ऐसा जान पड़ा कि समुद्र की लहरे बड़ी तेजी से स्टेशन को निगलने के लिए उमड़ यड़ी है और मैं उस अपार जन-समूह के साथ उनकी लपेट में फँसकर बहा चला जा रहा हूं। कुछ सूझ नहीं पड़ रहा है। इनमानों की तसवीरे जल-जतुओं की तरह इधर-उधर दौड़ रही हैं। तभी किसी ने जोर से हाथ का बैग छीन लिया, “अरे बाप रे !” मैं काप उठा कि उसी बक्त कोई चिल्लाया, “लाला साहेब। इधर आइए, इधर।”

मैं चौंककर हड्डबड़ाया तो देखता क्या हूं, वही सज्जन पसीने से लथपथ खिड़की से झूककर चिल्ला रहे हैं, “ओ लाला साहेब। आइए, आइए।”

बस, फिर क्या था, मैं खिड़की में से भीतर खीच लिया गया। दरवाजे पर बराबर फौजदारी चल रही थी। न तो उतरने वाले उतर सकते थे और न चढ़ने वाले चढ़ सकते थे। मैंने सांस लेकर अपने चारों तरफ देखा तो पता लगा कि मेरे साथी (जिन्हें अब मैं मौलाना कहूँगा) सामने ऊपर की बर्थ पर मेरे बिस्तर को सिर के नीचे और सूटकेस को पैरों के नीचे दबाए बड़े इत्मीनान से लेटे हैं। बाकी गाड़ी में एक अजीब दृश्य है। कुल 40 सीटों के लिए 85 इसान हैं। उनमें भी तीन-चार फौजी हैं, जो मौख्सी हकदारों की तरह पैर फैलाए लेटे हैं। कुछ दरवाजों के साथ दीवार से मट गए हैं। कुछ ने पैरों के नीचे जगह ढूँढ़ ली है। कुछ अभी तक खड़े-खड़े चिल्ला रहे हैं और जब तक गाड़ी चलेगी, चिल्लाते रहेंगे। मैं जहां खड़ा था, वही बैठने लायक जगह थी, इसलिए चुपचाप वही बैठ गया। मौलाना ने मुझे देखा और कहा, “लाला साहेब। सामान कब्जे में है। इत्मीनान से बैठ जाइए।”

मैंने हँसकर कहा, “शुक्रिया।”

वे बोले, “अरे साहब, शुक्रिया की आपने खूब कही। वह देखिए तो आपके पीछे कौन साहब हैं, खीच लीजिए ऊपर हाँ, हाँ हाँ..” मैंने देखा कि तुर्की टोपी पहने एक नौजवान बड़ी आजिजी से कह रहे हैं, “आने दीजिए जनाब। बहुत जरूरी सफर है। बक्त तग है।” दरवाजे पर कृपाणधारी सरदारजी मौजूद थे। बड़ी लापरवाही से बोले, “यहां जगह नहीं है, आगे जाइए, आगे।”

“अरे सरदारजी..”

“आगे जाइए..”

कि तभी मौलाना फुर्ती से ऊपर से कूद पड़े और बड़ी बेतकल्लुफी से उन मौलवी साहब को खिड़की से अंदर खीच लिया और बोले, “अजी सरदार साहेब। सभी को जाना है। खड़े-खड़े चले जाएंगे।”

गाड़ी भी चल पड़ी। मैदान आया, हवा लगी, मुरझाए हुए दिल खिल उठे और मुसाफिरों ने आराम की सांस खींची। कुछ आपस में बातें करने लगे, कुछ ने दीवार से सिर लगाकर आंखें मींचीं, कुछ अखबार या किताबे पढ़ने में मशगूल हो गए। फौज के सिपाही जेब में से बिस्कुट निकालकर चबाने लगे। मेरे पास ‘विश्ववरणी’ का ‘चीन अक’ था, मैं उसी को पढ़ने लगा और सोचने लगा कि जापान का मुकाबला करने के लिए हमें चीन से बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। न जाने कब तक इसी सोच-विचार में पड़ा रहा कि अचानक मुझे लगा, हमारे डिब्बे में बड़ी तेज शरीफाना बहस छिड़ गई है। मैंने पत्रिका हटाकर उस ओर ध्यान दिया तो पता लगा कि मौलवी साहब बड़ी सजीदगी से हमारे मौलाना को समझा रहे थे, “जनाब। आप भूलते हैं, ‘हिंदुस्तानी’ न कोई कौम है, न जन सकती है। इनसानी बिरादरियां कभी कौमियत पर नहीं बना करतीं, उनकी बुनियाद मजहब पर है। यैगबर ने यहले ही यह ताकीद कर दी थी कि किसी भी मुल्क के हो, मुसलमान सब एक है। उन्होंने कही नहीं कहा कि अरब के

मुसलमान और गैर-मुसलमान सब एक है। उन्होंने इनसानों को हमेशा के लिए दो फरीको में तकसीम कर दिया है—मोमिन और गैर-मोमिन।”

वे बोल रहे थे और मौलाना भेरे भूटकेस को पैरों में टबाए उनके मुंह की तरफ बड़ी लापरवाही से देख रहे थे। वे चुप हुए तो मौलाना ने बड़ी जोर से ‘हूं’ कहा और चुप हो गए। मौलवी साहब फिर बोले, “कौमियत को आज भी कोई नहीं मानता। रूस की शोहरत आज कितनी है। उसी रूस को बनाने वाले लेनिन ने मजदूरों को इकट्ठा करने की जो स्कीम बनाई है, वह भी कौमियत की तरदीद करती है। उसने यही कहा है कि दुनिया के मजदूरों, यानी रूस, हिंदुस्तान, ईरान, फ्रांस आदि सारे मुल्कों के मजदूरों, एक हो जाओ। उसके कहने के मुताबिक, हिंदुस्तान का मजदूर और रूस का मजदूर आपस में भाई है, जबकि रूस का मजदूर रूस के सरमायादार का दुश्मन है।”

मैं उनकी दलीले सुन रहा था कि उसी बक्त अचानक स्टेशन आ गया। डिब्बे में फिर खलबली मच गई। मौलाना कूटकर नीचे आ गए और जो भी मुसाफिर उस डिब्बे में दाखिल होना चाहता था, उसे ऊपर चढ़ाने लगे। मौलवी साहब बोले, “वल्लाह, आप क्या करते हैं? कहा बिठाएंगे इनको?”

“अरे साहब,” मौलाना ने लापरवाही में कहा, “बैठ ही जाएंगे, आप भी तो बैठे हैं।”

ज्यों-त्यों कर गाड़ी ने सीटी दी और मौलवी साहब ने फिर फरटि के साथ अपनी दलीलें शुरू कीं। लेकिन मौलाना उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। वे अपने सामने बैठे हुए मुसाफिरों में से एक काले से नाटे मुसलमान युवक को बड़े गौर से देख रहे थे, जो पिछले स्टेशन पर इस डिब्बे में चढ़ा था और स्टेशन से दूसरी तरफ, जिस तरफ बस्ती थी, मुंह करके दोनों हाथ फैलाए खड़ा ध्यान के साथ अल्लाह से दुआ मांग रहा था। वह चौड़ी काली किनारी का तहमत लपेटे हुए था। उसके कलफ किए हुए चिकन के कुरते से उसका काला बदन साफ चमक रहा था और उसके डरावने चेहरे से इनसानियत इस तरह झलक रही थी, जिस तरह काली रात में चांद झलकता है। वह इसी हालत में बड़ी देर तक दोजानू बैठा रहा। मौलाना तब तक बड़े गौर से उसे देखते रहे। गाड़ी में चिल्ल-पों मच रही थी। एक मारवाड़ी लाला बड़े जोर से एक भगी पर भड़क रहे थे। इसी बीच दुआ खत्म होने पर युवक ने दोनों हाथ अपने मुंह पर फेरे और खड़ा हो गया। मौलाना ने जरा मुलायमियत से उस जवान से पूछा, “मेरे दोस्त। आप बता सकेंगे, उधर क्या है?”

नाटे युवक ने बड़ी बेतकल्लुफी से कहा, “किधर?”

“जिधर देखकर आप दुआ मांग रहे थे।”

युवक संजीदा हो उठा, “वह एक लंबी कहानी है।”

“तो सुनाइए न। दिल ही बहलेगा।”

युवक ने कहा, “वह दिल बहलाने की कहानी नहीं है, मौलाना, बल्कि दिल

पाक करन वाली दास्तान है

मौलवी साहब की उत्सुकता जागी, “किसी शहीद का मकबरा होगा?”

“जी हा, वह मकबरा ही है, लेकिन जिदा शहीद का है।”

मौलवी साहब चकराए। मारवाड़ी लाला चुप होकर उसे देखने लगे। फौजियों ने भी उधर आंखें केरी, लेकिन मौलाना हँस पड़े, “आप तो जनाब पहेलिया बुझा रहे हैं। साफ-साफ बताइए यह किसका मकबरा है?”

अब उस नाटे जवान मे बड़प्पन उभर आया। उसने कहा, “मौलाना साहब। यह ऐसी कहानी है जिस पर आज की दुनिया को एतबार नहीं आ सकता, लेकिन आप सुनना ही चाहते हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं है। मैंने यह कहानी अपने अब्बा की जबानी कई बार सुनी है। जिस चबूतरे को आप मकबरा समझ बैठे हैं वह असल मे मामूली चबूतरा है, जिस पर दिन के वक्त गरीब कूजड़े और माली साग-सब्जी बेचा करते हैं। अब्बा कहते थे कि उनके वक्त में इसी चबूतरे को लेकर कस्बे के हिंदू-मुसलमानों में सख्त तनातनी छिड़ गई थी। हिंदू कहते थे, यह चबूतरा हमारा है, हम इस पर कथा किया करेंगे। मुसलमानों का तकाजा था कि हम इस पर नमाज पढ़ते हैं और जिस जगह नमाज पढ़ी जाती है उस जगह के लिए मुसलमान अपना सिर देने मे भी गुरेज नहीं करेंगे। इसको लेकर कई बार दोनों कौमों के कई बेगुनाह इनसानों का खून भी बहा और मुकटमे भी हुए। कई होनदार नौजवानों ने जेलों में अपनी जिदगी बरबाद की, लेकिन जैसा कि इन मामलों में हमेशा होता है, इस चबूतरे का फैमला न हो सका। हिंदुओं के सरगना कस्बे के एक मशहूर वैद्य ला सुदरलाल थे और मुसलमानों के नेता महबूब कमाई थे। दोनों संप्रदायों मे जोश था, जुनून था और थी मजहब के लिए मर-मिटने की तमच्छा। सरकारी अफसर हमेशा की तरह कान में तेल डाकर बैठे थे, लेकिन रात को सोते समय हर शख्स यही चर्चा करता था कि कल न जाने क्या हो जाए और कितना खून बहे। बारिश होने से पहले दम घोट देने वाली गर्मी की तरह बहु हालत सबको सता रही थी कि एक रात सचमुच ही सांप्रदायिक दगे के बादल उमड़-घुमड़कर कस्बे पर छा गए..”

कहते-कहते युवक की आंखे चमकने लगीं। मौलाना के साथ अनेक निगाहे एक बार उस पर जा अटकीं। सबके दिल में अलग-अलग कौतूहल उठा, “आगे क्या हुआ?”

युवक कहता रहा, “लेकिन उसी रात एक अनहोनी घटना घटी। महबूब कसाई का इकलौता बेटा रमजान एकाएक सख्त बीमार हो गया। दो घटे के अदर ही उसका मुंह नीला पड़ गया और हाथ-पैर ठड़े हा आए। महबूब ने कलेजा थाम लिया। घर में कुहराम मच गया। उसकी बालदा ने बाल नोंच डाले। पडोसियों के चेहरे पर मौत की खौफनाक नारीकी छा गई कि अचानक महबूब के एक चचा बोल उठे, ‘इसकी दवा एक ही आदमी के पास है।’

‘किसके पास?’ एक साथ कई आवाजें आईं।

“चचा बोले, ‘कोई फायदा नहीं, क्योंकि तुम वहा तक नहीं पहुँच सकते। ला सुंदरलाल ही इस वक्त रमजान को बचा सकते हैं। उन्हीं के पास इस मर्ज की दबा है।’

“सुनकर बेहिसाब खामोशी छा गई। महबूब ने दोनों हाथों से मुंह ढाप लिया। तभी अदर से खड़खड़ाहट हुई। रमजान की वालदा कह रही थीं, ‘मैं जाऊँगी।’ फिर भी कोई नहीं बोला। सब बुत बने बैठे रहे। दुश्मन के आगे गिड़गिड़ाना मौत के दर्द से हजार गुना गहरा दर्द है। महबूब के दिल में बार-बार उठा, ‘मेरा बेटा, मेरा इकलौता बेटा। आह खुदाबंद करीम। परवरदिगारं। तू क्या चाहता है।’

“उसके दिल में कैसा तूफान उठ रहा था, यह वही जान सकता है जिसके खानदान की आखिरी लौ बुझने से पहले टिमटिमा रही हो। अंदर से फिर आवाज आई, ‘मैं जा रही हूँ।’ कि एकाएक रमजान के अब्बा उठ खड़े हुए और बोले, ‘चचा। चलो, मैं लाला सुंदरलाल से बेटे की भीख मांगूंगा।’

“चचा उठे, और भी कई आदमी साथ चले।

“बाहर सन्नाटे के साथ तारीकी गलबाही डाले सोई थी, लेकिन उसी की छाती पर पैर रखकर वे आगे बढ़े चले गए। तंग गलियाँ, गढ़ों से भरे हुए चौक, फिर बिजली की रोशनी से चमकती हुई तारकोल से लिपी-पुती सड़कें पार करके जब वे लोग सुंदरलाल की कोठी के सामने पहुँचे तो उनकी बैठक की खिड़कियों से होकर बिजली की तेज रोशनी सड़क पर बिखर रही थी। एक साथ कई आवाजें सुनाई पड़ रही थीं और उन सब आवाजों से ऊपर उठकर उनके पेंचदार हुक्के की गुड़गुड़ाहट काफी दूर तक सन्नाटे को भंग करती हुई फैल रही थी। कस्बे के हिंदू नेता तनातनी के किसें को लेकर बहस कर रहे थे कि दरवाजे पर दस्तक हुई। पूछा, ‘कौन है?’

“जवाब मिला, ‘महबूब।’

“‘महबूब?’ कई आवाजें बौखलाहट में एक साथ सुनाई दीं। हुक्के की गुड़गुड़ाहट एकदम तेज होकर रुक गई। दरवाजा खुला। महबूब सीधे जाकर लालाजी के पास बैठ गया और कहा, ‘लाला साहब। इस वक्त मुसलमानों का नेता महबूब हिंदुओं के नेता से मिलने नहीं आया, बल्कि एक इनसान दूसरे इनसान से भीख माँगने आया है।’

“इतना कहकर उसकी आँखें भर आई, आवाज नहीं निकली। कमरे में सन्नाटा छा गया। लाला सुंदरलाल ने हुक्के का कश जोर से खींचा और महबूब के चचा की तरफ मुखातिब होकर पूछा, ‘क्यों अब्दुल्ला, क्या बात है?’

“चचा ने कहा, ‘महबूब का एक ही बेटा है, वही मौत के पंजे में फंसा है। तुम्हारे पास उसकी दबा है। तुम्हीं उसे बचा सकते हो।’

“सन्नाटा और भी गहरा हो आया। सभी ने भेट-भरी निगाहों से एक-दूसरे को

दख्खा, लाला सुंदरलाल ने फिर एक बार जोर का कश खीचा। शुरु का अबार मुह से उठकर चारों तरफ फैल गया। एक क्षण के बाद बोले, 'आप लोग जाए। मैं अभी आता हूँ।'

"निगाहे फिर एक-दूसरे से मिलीं। वे लोग उठे, निहायत अदब से झुककर सलाम किया और चले गए। कमरे में अब सभी एक साथ बोल उठे, 'यह सब धोखा है। आप वहाँ नहीं जा सकते।'

"लाला सुंदरलाल हैसे, 'हो सकता है, पर मैं जाऊगा। मेरे वचन दे चुका हूँ।' अब 'जो कुछ भी हो।' और उन्होंने पुकारकर कहा, 'अहमद, इयोढ़ीबान से कहो, लालटेन लेकर मेरे साथ चलो।'

"उसके पंद्रह मिनट बाद ही अहमद को आगे करके लाला सुंदरलाल तग गलियों में बढ़े चले जा रहे थे। महबूब का घर आया, दरवाजे पर चचा थे। लेकर अंदर बढ़े। एक इयोढ़ी, दो इयोढ़ी, तीन इयोढ़ी एकाएक लाला सुंदरलाल कांप उठे—कहीं सचमुच धोखा तो नहीं है। पर तीसरी इयोढ़ी पार करके जैसे ही उन्होंने सहन में कदम रखा तो कई आवाजे एक साथ आदाब बना लाई। उन्हे रमजान के पास ले जाया गया। लाला साहब बड़ी देर तक नब्ज थामे बैठे रहे। रोगी की परीक्षा की, पेट देखा, आंखें खोलीं और फिर बोले, 'महबूब! तुम्हारा बेटा बच जाएगा ।'

कहते-कहते सहस्रा उस युवक की आंखें चमककर गीली हो गई। सुनने वालों के दिल धड़क रहे थे। युवक ने एक लंबी राहत की सांस खींचकर कहा, "आगे कहना फिजूल है। वह लड़का बच गया। उस रात जो बादल खून बरसाने उमड़े थे, पानी बरसाकर चले गए।

"दो दिन बाद लाला सुंदरलाल के मकान पर यह फैसला हुआ कि यह चबूतरा कस्बे के गरीब कूजड़ों और मालियों को सौप दिया जाए जो इस पर बैठकर सब्जी बेचा करेगे।"

गाड़ी तब पूरी तेजी से दौड़ रही थी। चबूतरा बहुत पीछे रह गया था, लेकिन सभी सुनने वालों की आंखें उस वक्त चबूतरे को अपने सामने देख रही थीं।



## आज होली है?

डॉक्टर ने उन्हें आश्वस्त करने हुए कहा, "आप उत्तेजित न हो, नगेन बाबू। शहर में अब शाति है।"

"शाति है?" नगेन ने भी उसी शाति भाव से कहा, "लेकिन डॉक्टर साहब, क्या आप बता सकेंगे कि आज क्या है?"

"आज?" डाक्टर जैसे सोच में पड़ गए।

"हाँ, आज वे लोग आने वाले हैं।"

"नगेन बाबू। आप तनिक सो लीजिए। उनके आने पर मैं आपको खबर दे दूगा।"

"धन्यवाद। लेकिन आपने बताया नहीं कि आज क्या है?"

"आज हाँ याद आया, आज होली है।"

"और आज भाभी आएगी।" कहकर नगेन हँस पड़ा खूब जोर से।

"नगेन बाबू। नगेन बाबू! क्या कहते हैं आप?"

"कुछ नहीं, डॉक्टर साब। सोचता हूँ पारसाल जब मैं होली पर घर गया था तो भाभी ने मुझे खूब उपदेश दिया था। मेरी भाभी बहुत पढ़ी-लिखी हैं। शास्त्र की बातें जानती हैं। धर्मशास्त्र की नहीं, मानसशास्त्र की।"

एक क्षण वह रुका। डॉक्टर की ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखा, फिर बोला, "डॉक्टर साब, आज भी सब लोग होली खेल रहे हैं पर एक अंतर के साथ। क्राति का रंग लाल है और रक्त का रंग भी लाल है। इसलिए क्रातिधर्मा हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे के रक्त से होली खेलते हैं।"

और नगेन फिर हँस पड़ा। डॉक्टर ने धीरे से उसकी छाती को दबाकर कहा, "आप फिर उत्तेजित होने लगें, नगेन बाबू। थोड़ा सो लीजिए न।"

नगेन ने डॉक्टर की ओर देखकर कहा, "अच्छा डॉक्टर साब। लेकिन आप यही बेठे रहिए।"

"मैं यही बेठा हूँ।"

और धीरे-धीरे नगेन ने आखे मींच ली, पर नीद नहीं आई। आई यारसाल की धुंधली-सी याद मन के पटल पर वैसी ही धुंधली छाया फैलती हुई चली गई।

भाभी के तनिक पास आकर विद्या ने कहा, "जानती हो, भाभी, भइया क्यों आए हैं?"

भाभी बानी, अपने घर आने के लिए भी काइ कारण होता है, पगली।

विद्या अप्रतिभ नहीं हुई। हँसकर बोली, “तो भी एक विशेष कारण है, भाभी,”  
और फिर नगेन की ओर मुड़कर मुस्करा पड़ी। “क्यों भइया? ठीक कहती हूँ न?”

नगेन ने इतना ही कहा, “खाक ठाक कहती हो!”

“यही सही, भइया, भाभी के साथ होली खेलकर तुम ‘खाक’ ही पाने की  
आशा लेकर आए हो न!”

और खूब जोर से हँसती खिलखिलाती विद्या वहां से भग गई।

भाभी भी हँस पड़ी थी। झरने की कलकल ध्वनि-सी वह शात हँसी

छाया गायब हो गई थी। नगेन चौक पड़ा, “डॉक्टर साब, आप जानते हैं कि मैं  
शास्त्र ने हमें भाभी के साथ होली खेलने का अधिकार दिया है। नहीं, आप नहीं बता  
सकते क्योंकि बहुत-सी बातों का विधान धर्मशास्त्रों में नहीं मिलता। परंपरा ही उनके  
लिए एक मात्र विधि-विधान और नियम-शास्त्र हैं। यही बात भाभी-देवर के होली  
खेलने के सबध में है। न जाने कब किस देवर ने पहले-पहल किस भाभी के साथ  
होली खेली होगी। यह एक शोध-प्रबंध का विषय हो सकता है”

डॉक्टर ने कहा, “आप .”

“अच्छा, डॉक्टर साहब, आपकी भाभी हैं?”

“आप सो जाइए नगेन्द्र बाबू।”

डॉक्टर उसके माथे पर हाथ रख लेते हैं। वह फिर आख मीच लेता है। नीद नहीं  
आती। विद्या आती है, “नगेन भइया, भाभी इन सब बातों को पसंद नहीं करती।”

“क्यों री?”

“वे कहती हैं, जो संस्कारों के गुलाम हैं, जो ऊच-नीच और छूत-छात को  
मानते हैं, उन्हे आमोद-प्रमोद का अधिकार नहीं होता।”

“भाभी कहती है यह?”

“हा भइया। तुमने देखा नहीं, वे कितनी सादी रहती है। देवी हैं वे, भइया। एक  
दिन मुझसे दाल मे नमक ज्यादा पड़ गया था। पर उसी शात भाव से खाती रही। मैंने  
कहा, ‘भाभी! नमक ज्यादा है।’ तो बोलीं, ‘पड़ जाता है, विद्या। अगर ज्यादा न पड़े  
तो ठीक का पता कैसे लगे।’ और तुम्हें पता है कि उनके घर में तो खाना पकाने का  
काम भी हरिजन स्त्री करती है .।”

नगेन ने फिर आँखें खोल दीं। डॉक्टर वही उसी तरह बैठे थे। उसने कहा  
“अभी-अभी मुझे एक बात सूझी है, डॉक्टर साहब। अगर हिंदू-मुसलमान न लड़े तो  
शाति के महस्त को हम कैसे पहचानेंगे। शांति ध्येय है तभी तो संघर्ष अनिवार्य है।”

इस बार डॉक्टर ने जवाब नहीं दिया। दो क्षण बाद नगेन को सचमुच लगा कि  
उसे कुछ सो लेना चाहिए। सध्या को भाभी जरूर आएंगी। मुझे उत्तेजित देखकर वे  
दुखी होंगी। उसने मिर की पट्टी पर हाथ फेरा। छाती पर रखे हुए दाहिने हाथ को

सहलाया और आंखे मीच ली। उसे लगा जैसे दर्द कम हो रहा है। पास के कमरे का जो घायल व्यक्ति है, वह भी 'हाँ' 'हूँ' नहीं करता। दूर नगर तक सन्नाटा ही सन्नाटा है

पर नींद है कि आनी ही नहीं। भाभी पूछती है, "नगेन भइया। आप होली क्यों मनाते हैं?"

नगेन झिझका, फिर बोला, "अनेक बातें हैं, भाभी!"

"बताओ न फिर!"

तब नगेन ने भाभी को अनेक कहानिया सुनाई—प्रह्लाद की, कृष्ण और राजा पृथु के राज में बसने वाली ढूँढ़ा राक्षसी की। फिर बोला—"भाभी! अपने ही देश में क्यों, फ्रांस, इंग्लैड, जापान, रूस सभी जगह तो होली खेली जाती है। बरमा में रग नहीं डालते, विशुद्ध जल से खेलते हैं वे। कैसा उल्लास, कैसा आनंद, कैसी शालीनता स्त्रिया भी समान रूप से!"

"सच? बाप रे बाप। कितना विषुल है ज्ञान तुम्हारा?"

वह बोलता रहा, "भाभी! यह तो प्रकृति का त्यौहार है। बसत ऋतु की फसले पककर तैयार होती हैं। प्रकृति हँसती है। विज्ञान हँसता है। उन्हे देखकर हम भी हँसते हैं। हँसना जीवन है न? दुनिया के झंझटों में पड़कर रात-दिन हम रोते रहते हैं। एक दिन खूब जी-भर हँस ले, ऐसा सोचकर हमारे दूरदर्शी पुरखों ने होली का त्यौहार चलाया होगा। कितनी अनोखी सूझ थी उनकी, भाभी!"

"हा, भइया! बड़ी अनोखी सूझ थी उनकी। साल-भर रोकर एक दिन हँस लो या एक दिन हँसकर साल-भर सो लो। कितना महगा सौदा है यह!"

"भाभी!"

"नगेन भइया, हँसना और रोना कभी एक साथ नहीं हो सकते। और भइया, एक बात और भी है—जब एक रोता है तभी दूसरे को हँसी आती है।"

"नहीं, भाभी। आज तो सभी हँसते हैं!"

और नगेन फिर चौंक पड़ा, "सभी हँसते हैं? क्यों, डॉक्टर साब, आप शहर गए थे? आपने देखा। सब हँस रहे थे। नहीं, नहीं, भाभी ठीक कहती हैं, सब नहीं हँस सकते। हाँ, आज सब रो जरूर रहे होंगे। पर वह भी मिलकर नहीं, अलग-अलग। कमबख्त एक साथ रो भी नहीं सकते!"

"आप फिर क्या-क्या कहने लगे, नगेन बाबू। नींद नहीं आती?"

"हा, डॉक्टर साब आज नींद नहीं आ रही है। भाभी आ रही हैं न। मैंने उनसे कहा था, होली प्रकृति का पर्व है, पर क्या आपने आज की प्रकृति को देखा है? मुरझाई हुई फसले, दूर पृथ्वी के उस छोर तक फैला हुआ पीलापन और उसके बीच में जीर्ण-शीर्ण कंकालों की चलती-फिरती भयातुर छायाएं.."

"नगेन बाबू। आप इन सब बातों की चिंता क्यों करते हैं?"

नगेन बोला आप मरा चिता क्या करते हैं डॉक्टर? दूसरे के कष्ट देखकर जबरदस्ती मन म दर्द पैदा करना एक राग है क्या सभी डॉक्टर इस रोग के रोगी होते हैं?

“हाँ भइया!” धीमी व्यथित वाणी मे बोले डॉक्टर और छत की कड़ियों को देखने लगे।

“आप बुरा मान गए, डॉक्टर साब। आज होली है। सभी कहते हैं, कहे-सुने का बुरा न मानो, होली है।”

डॉक्टर हँस पड़े। नगेन चुप होकर फिर सोने की चेष्टा करने लगा। पर होली की ओर उसे न भूली। वह फिर भाभी के पास जा पहुंचा, “तुमने मेरी बात नहीं मानी, भाभी।”

“कब भइया? होली खेलने को कहते हो न! मना नहीं करती। बैठी हूँ, खूब खेलो।”

“सच, भाभी?”

और वह दौड़कर रग ले आया—लाल, पीला, नीला, हरा। भाभी वही उसी तरह बैठी रही।

नगेन ने पिच्कारी भरकर कहा, “भाभी, हो जाओ तैयार।”

उसी तरह, उसी जगह से भाभी ने कहा, “बैठी हूँ, नगेन।”

नगेन आगे बढ़ा, पर भाभी की ओर देखकर ठिठक गया, “भाभी, मैं नहीं खेलूँगा।”

“क्यों ऐ?”

“विद्या कहती थी, तुम यह सब पसंद नहीं करती।”

“मैं पसंद न करूँ, पर तुम तो पसंद करते हो। तुम्हारी पसंद मुझे मान्य क्यों न होगी।”

“नहीं भाभी। जिस बात को सब पसंद नहीं करते, उसमे जीवन नहीं होता।”

“क्या कहने लगे तुम, नगेन? दुनिया में तो रात-दिन ऐसा ही होता है। एक की पसंद जबरदस्ती दूसरे के सिर पर लाद दी जाती है। कोई भी प्रश्न नहीं उठाता।”

“नहीं भाभी, नहीं। मैं अपनी पसंद तुम पर नहीं लादूँगा। जानता हूँ, मेरा मन रखने को तुम यह सब कह रही हो, पर भाभी, हम संस्कारों के गुलाम हैं। हमे क्या रंग-रलियां मनाना सुहाता है।”

भाभी सहसा एक साथ हर्ष और विषाद से भर आई। वह अपने स्थान से उठीं और नगेन के सामने आकर बोली, “पगली विद्या के कहने मे आकर पागल न हो जाओ। डालो रग, मैं तनिक भी बुरा न मानूँगी, भइया।”

और कहते-कहते भाभी अद्भुत रूप से मुस्करा उठीं। नेत्रों में वात्सल्य की भावना सजग हो आई।

नगेन ने उन नेत्रों में झाका, चुपचाप रगवाली बाल्टी उठाई और भाभी के चरण पर उँड़ेल दी। फिर शीघ्रता से उन्हें छूकर बोला, “यही है भाभी, मेरा हर्ष, मेरा आमोद-प्रमोद यही है।”

और अस्पताल के एक कमरे में लेटे हुए नगेन के अंतर से एक सिसकी फूट पड़ी।

“अरे, आप रोते हैं, नगेन बाबू!” डॉक्टर हड्डबड़ाकर उसके ऊपर झुक आए “आप खतरे से बाहर हैं। आपके भाइया-भाभी अनें ही बाले हैं।”

“डॉक्टर साब, यह सन्नाटा अच्छा नहीं लगता। क्यों डॉक्टर साब, ये हिंदू-मुसलमान क्या आदमी नहीं हैं?”

“मैं नहीं जानता, नगेन बाबू, वे क्या हैं? मैं तो यही जानता हूँ कि आपको अब सो जाना चाहिए। लीजिए, यह दवा पी लीजिए।”

डॉक्टर ने एक गिलासी में भरकर दवा दी और नगेन उसे चुपचाप पीकर लेट गया। बोला, “बाई और करवट ले सकता हूँ न?”

डॉक्टर ने बिना कुछ कहे उसे बाई करवट लिटा दिया और कुरसी सरकार उसके सिरहाने आ बैठे।

नगेन सो गया। डॉक्टर उठकर कमरे में बीचोबीच टहलने लगे। सिविल सर्जन ने कहा था—आज नीद आ गई तो भय नहीं है।

और नीद आ गई थी। लेकिन आधा घंटे बाद ही पास के कमरे में कोई बड़े जोर से रो पड़ा। उद्धिन हाँकर डॉक्टर ने देखा-मृत व्यक्ति की लाश पर झुका हुआ एक आदमी फूट-फूट कर रो रहा है। और कपाड़डर यंत्रवन् कह रहा है, “चुप रहिए आप। अस्पताल में रोया नहीं करते।”

रोने की आवाज से नगेन भी चौक उठा, “क्या है, डॉक्टर?”

“कुछ नहीं, नगेन बाबू। सब ठीक है।”

“सब ठीक है। मैं आपको बताऊं मुझे किसने मारा था?”

“मुझे मालूम है, पर आपको नीद आई, नगेन बाबू?”

“खूब आई, डॉक्टर। अच्छा कौन था वह?”

“हमीद। आपके सहपाठी का भाई।”

“वही डॉक्टर। मुझे पहचानते ही वह बोला, मारो काफिर को। मैं नहीं जानता, मैं किधर भागा? कहा गिरा? कब यहाँ लाया गया? कैसी बात है? हजारों वर्षों से माथ रहते-रहते हम एक-दूसरे के लिए अजनबी बन गए हैं। या मानो जितना जानते जाते हैं, उतनी ही खून की प्यास बढ़ती जाती है।”

डॉक्टर बोला, “बोलने से आपका सिर नहीं दुखता? आप जरा और सो ले।”

नगेन ने कहा, “हिंदूमान में रहने वालों के सिर नहीं होता, डॉक्टर, आप इतना भी नहीं जानते? देखो न, भाभी को हम मा के समकक्ष भी मानते हैं और आधी पत्नी

के रूप में भी। हमारे अतर मे जो शाश्वत हिंसक पशु छिपा बैठा हे, उसे नष्ट करने की जरा भी चिंता नहीं करते, न चिंता करते हैं आर्थिक-सामाजिक विषमता को दूर करने की। बस, कभी हिंदू-मुसलमान-सिख कभी ब्राह्मण-अछूत न जाने कितने और कैसे-कैसे मुखोंटे लगाकर उस हिंसक पशु को पुचकारते रहते हैं ॥

वह जैसे थक गया हो, एक क्षण रुका, पर डॉक्टर पूरे समय स्तब्ध उसे देखता ही रहा। वही फिर बोला, “अच्छा डॉक्टर, वे लोग कब आ रहे हैं?”

“अभी देर है।”

“देर है!” इतना कहकर नगेन ने फिर नेत्र बद कर लिए। दूर तक सन्नाटा ही सन्नाटा था। कभी-कभी न जाने कहाँ से कोयल कूकने लगती थी। कभी-कभी कोई परीज ‘हाय-हाय’ कर उठता था। डॉक्टर चुपचाप ठहलते रहे। दबा का वक्त आने पर भी उन्होंने नगेन को नहीं जगाया।

रोज की तरह प्रकाश की किरणें एक-एक करके जाने लगीं। संध्या का अधा प्रकाश उनके स्थान पर दखल जमाने आ पहुँचा। खिड़की से झाँककर डॉक्टर ने देखा, नगर की ओर जाने वाली सड़क बिलकुल सूनी है। बारी-बारी पुलिस के दो सिपाही पैर मिलाए उस ओर आते हैं और चले जाते हैं। बूट की आवाज सूने मे गूजती रहती है। सगीन उनके कंधों पर है। एक-दूसरे की ओर देखकर वे मुसकरा उठते हैं मानो उन्हे भय नहीं है। वे स्वयं भय हैं।

तभी सुना, कोई उन्हें पुकार रहा है, “डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब।”

“कौन है?” उन्होंने मुड़कर पूछा।

“क्या नगेन्द्र राय यहीं है?”

“हो सकते हैं, पर तुम कौन हो?”

“मेरा नाम वहीद है। नगेन बाबू की भाभीजी आई हैं।”

डॉक्टर ने उसे ध्यान से देखा और बोले, “उन्हें यही बुला लो।”

वह नगेन की भाभी थीं—नितांत निश्चित, वातावरण के प्रभाव से एकदम अछूती और ममता की मानो साकार प्रतिमा।

डॉक्टर ने पूछा, “आप नगेन बाबू की भाभी हैं?”

“जी हा। क्या उनकी हालत चिताजनक है?”

“थी, पर अब नहीं है।”

“मैं उनके पास जा सकती हूँ?”

“जा सकती है, पर जरा उहरकर। वे मो रहे हैं..आप अकेली हैं?”

“जी हाँ, उनके भइया बबई गए हुए हैं।”

“आप डरीं नहीं?”

“डर ही तो मुझे यहाँ खींच लाया है, डॉक्टर साहब। इस बड़े डर के सामने मार्ग के सब डर मैं भूल गईं।”

“लेकिन यह वहीद कौन है?”

“अज्ज इसने मेरी रक्षा की, डॉक्टर साहब।”

“क्या कहती है आप? आप पर हाथ उठाया इन लोगों ने?”

“जी हा, पर वे लोग मेरा खून नहीं चाहते थे।”

“तब”

“आप नहीं जानते डॉक्टर, मैं कितनी सुंदर हूं। फिर काफिर। क्या यह कम दोष है मेरा?”

डॉक्टर हतप्रभ उनकी ओर देखता रहा—क्या ऐसी औरते भी इस देश मे हैं? कैसे निर्भय-निडर सब सुना रही है.

तभी नगेन जागकर बोला, “डॉक्टर साब, वे लोग आ गए?”

डॉक्टर ने उसके पास आकर कहा, “अब जी कैसा है?”

“डॉक्टर साब, मैंने एक विचित्र सपना देखा है, सुनोगे. ? मैंने देखा—भाभी पर कई व्यक्तियों ने एक साथ हमला कर दिया। पर वे डरी नहीं। खड़ी रहीं—अचल पर्वत की तरह। तभी न जाने कहाँ से आकर आकाश के एक देवता ने उनकी रक्षा की लेकिन..”

“लेकिन क्या, नगेन?”

“डॉक्टर, वह देवता मुसलमान था। क्या यह भा संभव है?”

“संभव नहीं, नगेन, यह सच है।”

“सच है? तब, तब भाभी कहाँ है?”

उसी क्षण नगेन ने देखा कि भाभी सचमुच उसके सामने खड़ी है। वह फुसफसाया, “भाभी..”

भाभी चुपचाप उसके पास आकर बैठ गई और उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर उसे सहलाती रहीं या शायद उमडते आंसुओं से लड़ती रही। कुछ थमकर बोलीं स्वेह परे स्वर में, “जी कैसा है, नगेन?”

“अच्छा है, भाभी।”

“तुम्हें चोट अधिक लगी थी क्या, भइया?”

“वह बात बीत गई, लेकिन तुम्हें भी क्या उन्होंने मारा था?”

भाभी हँसी विद्रूप से, “मुझे कौन मार सकता है, अबला हूँ मैं।”

नगेन भी हँसा, “तब सबल ही मरने के लिए हैं, भाभी?”

“शायद।”

“लेकिन यह कौन है?” उसने वहीद को देख लिया था।

“यह वहीद है। यही मुझे यहाँ ले आया है।”

“तब तब मेरा सपना सच्चा था। उन्होंने तुम पर आक्रमण किया, भाभी। मैं सब देख रहा था। इसी ने तुम्हें बचाया है न?”

और वह वहीद से बोला, “वहीद!”

“जी!” वहीद ने चौंककर कहा। वह अपने किसी ख्याल में मस्त वहीं बैठा

था। डॉक्टर मेज पर झुके हुए चार्ट लिख रहे थे। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि सकट टल चुका है।

नगेन ने कहा, “वहीद भाई, तुम मुसलमान हो?”

“हाँ, इसके साथ मैं और भी कुछ हूँ।”

“वह क्या?”

“मलेच्छ और अगर मैं कहूँ कि मैं सिर्फ मलेच्छ हूँ तो ज्यादा ठीक होगा।”

“शायद उसी तरह जैसे हम काफिर हैं!”

“बिलकुल ऐसे ही, भाई।”

“लेकिन तुमने इस काफिर की रक्षा कैसे की?”

वहीद गभीर हो आया, “मैं भी यह सोचता हूँ, लेकिन जब ये घिर गई तब मैंने देखा—माँ बिलकुल भी नहीं डरी है। इनकी उस बेखौफी की वजह से ही मैं यह कसूर कर बैठा।”

नगेन बोला अचरण से, “कसूर कहते हो तुम इसे?”

“हाँ भइया, दीन के बदों के लिए यह कसूर है। मुसलमान होकर मैंने काफिर का साथ दिया, यह गुनाह नहीं है क्या?”

“गुनाह” नगेन और भी विस्मय से भर आया।

भाभी ने कहा, “नगेन, एक के लिए जो पुण्य है, दूसरे के लिए वही पाप हो सकता है, इसमें विस्मय की बात क्या है। विषमता इस दुनिया की विशेषता है।”

“लेकिन भाभी,” नगेन बोला, “जो पाप है, जो बुरा है वह क्या सब के लिए एक नहीं है?”

“नहीं, वह एक नहीं है।” भाभी ने दृढ़ता से कहा, “और तुम जानते हो, ऐसा क्यों है? युग-युग के संचित संस्कारों ने हमारी चेतना को लील लिया है।”

डॉक्टर चुपचाप भाभी की ओर देख रहे थे। अब बोले, “नगेन बाबू, ये ठीक कहती हैं। मैं डॉक्टर हूँ, लेकिन अपने अंतर में मुसलमान की अपेक्षा हिंदू के लिए अधिक अधीर हो उठता हूँ। जानता हूँ, यह पाप है, फिर भी पुण्य मानकर इसे करता हूँ।”

नगेन ने कहा, “डॉक्टर साब, मैं कुछ नहीं समझ पा रहा। मुझे करवट लिया दीजिए और आप जा सकते हैं। अब मुझे भय नहीं है।”

फिर वहीद की ओर मुड़कर वह बोला, “वहीद, तुमने जो कुछ किया उसके लिए हम लोग आजन्म तुम्हारी आभारी रहेगे। अपनी फैलाई हुई इस विषमता की यदि एक भी कड़ी हम-तुम तोड़ सकें तो मनुष्य का कल्पण ही होगा।”

और उसने वहीद का हाथ अपने ओठों पर रखकर चूम लिया।

न जाने क्यों वहीद सिहर उठा। उद्धिग्न होकर उसने कहा, “मैं अब भी नहीं जानता मैंने क्या किया। मेरे खुदा..।”

वह आगे न बोल सका। उसकी आँखें भीग आई थीं।

## ये बंधन

साड़ी का पैकेट लेकर अनीला जैसे ही जाने के लिए उठी, देखा—सामने की बेंच पर एक मुस्लिम युवती बैठी है। नकाब के भीतर से झाकती उसकी लबी-लंबी आणे कौतुहल से पूर्ण हैं और लाल-लाल ओढ़ो पर मीठी मुस्कराहट झलक रही है। उसने सोचा—मैंने इस सुंदर मुख को कही देखा है, पर कहाँ

छोटा भाई प्रदीप साथ आया था। बोला, “चलो न, जीजी। उधर क्या देख रही हो? कुछ है क्या?”

“है तो।” कहकर अनीला उधर ही बढ़ी। तब प्रदीप ने देखा—सामने जो मुस्लिम युवती बैठी है वह शीघ्रता से उठी और अनीला के पास आकर इस प्रकार खड़ी हो गई मानो उसमे सभा जाना चाहती हों। अनीला ने उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया और दबाकर बोली, “सोच रही थी। इस सुंदर मुख को कही देखा है। तू तो सुरैया, इतना बदल गई है।”

“सच!”

“हा। क्या खाती है?”

सुरैया मद-मंद हँसती हुई बोली, “मैं क्या खाती? मुझे तो तुम जरा भी नही भूलीं। अपनी बात कहो जो पुरानी सहेलियो को भी नही पहचानती।”

“सच सुरैया, नही पहचाना। तू अब वह कहाँ है? तेरी आखो में न जाने क्या भरा है?”

सुरैया ने हाथ ढबाकर कहा, “सच?”

“जान पड़ता है, शादी हो गई है।”

सुरैया ने गरदन हिला दी।

“तभी तो। और कहती है, मैं क्या खालंगी?”

सुरैया हँस पड़ी। उनके चारो तरफ भीड़ थी, युवक और युवतियाँ, स्त्री और पुरुष, बृद्ध और बालक, नाना जाति के। कुछ उन्हे देखते और आगे बढ़ जाते, वे व्यस्त थे। कुछ दृष्टि गड़ाकर देखने लगते। प्रदीप सोचने लगा, यह कौन है।

सुरैया ने पूछा, “तुम अभी तक पढ़ रही हो?”

“हाँ।”

“कौन-सी क्लास मे?”

“एम.ए।”

“ओह, एम.ए ! क्या करोगी इतना पढ़कर ?”

“पढ़कर कुछ करना होता है ?”

“और क्या नहीं ?”

“पता नहीं, सुरैया। पर हां, तू क्या अकेली है ?”

“नहीं, वे हैं।”

“दूल्हा भाई !”

“हां, हां।”

“अरी बता तो कौन-से हैं ?”

“वे, उधर—नीली धारी की कमीज और सफेद पैंट पहने हैं।”

“ओ !” अनीला ने उधर देखा और मुस्कराई, बोली, “जोड़ी खूब मिली है। बधाई ! कैसे है ?”

“सब यही पूछ लोगी ? तुम्हारे साथ कौन है ?”

“छोटा भाई है। हां, सुरैया, मेरे साथ चलो।”

“अभी।”

“कुछ हर्ज है ?”

“नहीं तो, पर बुलाओगी तो फिर किसी दिन आऊंगी। अब तो ”

“अब तो क्या ?”

सुरैया का स्वर सहसा धीमा पड़ गया। बोली, “सदा वे ही अलहड़ दिन नहीं रहते। अब तो चारों तरफ देखना होता है। इतनी देर हो गई, न जाने क्या कहते होंगे। जाऊँ ?”

अनीला को हँसी आ गई, “बड़ी डरपोक है तू, सुरैया। इतनी जल्दी।”

“बुलाना तब बताऊंगी।”

“घर तो बताती जा ?”

“कूचा रहमान, नबर 717।”

“नाम ?”

सुरैया पास जाकर कान में फुसफुसाई, “मिस्टर अरशाद नासरी।”

सुरैया चली गई। अनीला मुड़ी। उसके मस्तिष्क में तब अनेक चित्र उठे और गिरे। लखनऊ में उन दोनों ने एक साथ मैट्रिक पास किया था। सुरैया वकील की लड़की थी—बहुत चंचल और दबंग। वैसे पढ़ने में अच्छी थी, परतु हिसाब में बहुत कमज़ोर थी। अनीला सदा अब्बल आती थी। इसीलिए सुरैया को बार-बार अनीला की शरण लेनी पड़ती थी। यद्यपि समय के अभाव में यह जान-पहचान बहुत गहरी तो नहीं हो सकती थी, परंतु उसमें प्यार का अभाव भी नहीं था। आज अकस्मात् इस प्रकार मिल जाने पर वही प्यार गहरे मिठास से भर उठा। सामीप्य में अलगाव, और दूरी में अपनापन होता है न। इसीलिए अगले दिन जब अनीला ने अपनी महाराजिन को तांगे के

साथ भंजा तो सुरैया भना नहीं कर सकी। सच तो यह है कि वह छुलावे की राह देख रही थी। इसके लिए उसे अपने मालिक से भी रुठना पड़ा था।

“कौन थी वह?” अरशाद ने घर टौटकर पूछा, “बड़ी घुट-घुटकर बात हो रही थी।”

सुरैया मुसकराई, “पुरानी सहेली है। लखनऊ में साथ पढ़ती थी।”

“किसकी लड़की है?”

“बाबू रामकिशोर की, वही जो मशहूर बकील हैं। कांग्रेस में काम करते हैं। आजकल ऐसे में पढ़ रही है।”

“सच!”

“जी हाँ। जेल हो आई है।” सुरैया बोली, “हमारी तरह थोड़े ही हैं जो हमेशा किले में बंद रहती हैं।”

मुसकराकर अरशाद ने कहा, “आजादी बड़ी खतरनाक होती है, बेगम।”

“क्या मतलब?”

“मतलब भी बताना पड़ेगा।” अरशाद ने उसी तरह कहा, “जो लड़किया इस तरह आजाद धूमती है, उनका दिल बश में नहीं रहता।”

सुरैया ने शरारत से अरशाद की ओर देखकर, कहा, “मर्दों को हर तरफ दिल का सौदा नजर आता है। मगर उसके लिए भी क्या परदे और बेपरदे का फर्क है? वह तो परदे के अंदर भी उतना ही मचलता है, जितना बाहर, बल्कि परदे में उसे ज्यादा आजादी रहती है।”

चोट खाकर अरशाद तिलमिला उठा। जेंय उत्तरने के लिए उसने कहा, “तुम्हें तो बहुत बातें करनी आ गई हैं, बेगम। आखिर तुम्हारे चालिद भी तो बकील थे।”

“जी हा, थे।”

“और सुना, तुम्हें एक हिंदू मास्टर पढ़ाने आते थे।”

सुरैया हँस पड़ी, “हाँ, आते थे, बेचारे। बीच में परदा होता था। उसी के पार बैठकर वह सवाल समझाते थे और मैं स्लेट पर हल करके बाहर रख देती थी।”

अरशाद हँसा, बोला, “परदे में कोई सूराख नहीं था?”

“था।”

“उसमें से झांकती थीं?”

“हा।”

“अच्छे लगते थे?”

“हटो भी।” सुरैया ने विदूप से कहा, “क्या बातें सूझती हैं तुम्हें। जो बात छिपाई जाती है उसको देखने के लिए सभी का मन करता है। मुझे तो वे बातें सोचकर अब भी बड़ी हँसी आती है। कैसे-कैसे कानून बनाए हैं आप लोगों ने, बाप रे। कभी-कभी तो ऐसा मन करता है इस बुरके को फाड़कर फेंक दूँ।”

आप कह दो बस

मैं कह दू तुम क्या बुजदिल हो?

सुरैया ने अरशाद की आँखों में अपनी आँखे डाल दी और धीरे से कहा  
“बुजदिल तो नहीं हू पर मेरी ताकत तो आप ही है, मेरे मालिक।”

अरशाद को यह अदा बड़ी प्यारी लगी। उसने सुरैया को छाती से लगाकर चूम लिया। फिर कहा, “एक दिन सब रुकावटे दूर होंगी पर तब जब मेरी ताकत तुम बनोगी।”

सुरैया ने कहा, “वह तो मैं अब भी हूं।”

“कहने-भर को, बरना”

सुरैया चोट खाकर तड़प उठी। परतु दूसरे ही क्षण उसने संभलकर कहा, “हा,  
अनीला मुझे बुला रही थी। चली जाऊ?”

“मैं क्या जानू?”

“और कौन जाने?”

“सुरैया, बात यह है .” और आगे अपने भाव व्यक्त करने के लिए शब्द ढूँढ़ने में असमर्थ अरशाद ने सुरैया को देखा। आँखें मिलीं। सुरैया का मन और भी पस्त हो गया, बोली, “आप नहीं चाहते तो नहीं जाऊंगी।”

“सुरैया, बात यह है .”

“बात मै जानती हू। मुसलमान औरत घर की चारदीबारी से बाहर जाने के लिए  
नहीं होती, यही न?” कहकर वह धम-धम करती हुई चैक में चली गई। तभी भिश्ती  
ने पुकारा, “पानी ला रहा हूं, जी, परदा कर लेना।”

सुरैया फिर कमरे में लौट गई। अरशाद ने चुपचाप जाकर किवाड़ खोले। भिश्ती  
ने सलाम झुकाकर पानी भरा और चला गया। सुरैया बाहर जाकर घर का काम देखने  
लगी। आजकल नौकर के अभाव में नवाबों के लिए भी शान रखना मुश्किल हो रहा  
है। उनकी तो बात ही क्या थी। किसी तरह काम चल रहा था। रोटी पकाना, बरतन  
मलना, झाड़ना-बुहारना, सभी कुछ सुरैया अपने-आप करती थी। अब भी चुपचाप  
बावचाँखाने में पहुंची और शाम के खाने की तैयारी करने लगी, पर मन उसका भारी  
था। आँखें आँसुओं से पूर्ण थीं। कोहनी से उन्हें पोछकर उसने सालन उठाया। तभी  
अरशाद ने पास आकर कहा, “बेगम।”

“...”

“सुरैया, रूठ गई?”

“...”

“सुरैया, मेरा यह मतलब नहीं था। चली जाना अच्छा।”

“मै नहीं जाऊंगी।”

“सुरैया।”

“मैं नहीं जाऊँगी, मैंने कह दिया।”

पर यही सुरैया जब अनीला की महाराजिन ने आकर कहा, ‘आपको अनीला बीबी ने बुलाया है,’ तो खुशी से नाच उठी। बोली, “मैं तो राह देख रही थी। बैठो, अभी चलती हूँ।”

अनीला दरवाजे पर खड़ी हुई थी। सुरैया को देखकर हँसती-हँसती आगे बढ़ी, “तुम आ गई, सुरैया!” उसने कहा, “मैं तो समझी थी तुम्हारे ‘वे’ नहीं आने देंगे।”

सुरैया ने सबसे पहले नकाब उठाकर देखा—अनीला अकेली है। तो बुरका उतारकर एक कुरसी पर फेंक दिया, हँसकर बोली, “उफ! अब जान-में-जान आई है। या खुदा, कितनी गरमी है!”

अनीला ने पंखे को उसकी ओर धुमा दिया, कहा, “बड़ी गरमी लगती है।”

“गरमी क्या है जैसे फिर नहीं पड़ेगी।”

अनीला बोली, “यह तो हमेशा ही पड़ेगी पर हम हमेशा नहीं रहेंगे। शरबत पियोगी?”

“जो पिला दो।”

अनीला ने पुकारकर कहा, “महाराजिन, शरबत ले आना जरा।”

सुरैया को हवा लगी तो उठकर कमरे को देखने लगी। सामने किताबों की अलमारी थी, बोली, “इतनी किताबें हैं। बड़ा पढ़ती हो, अनीला?”

“तुम्हारा जी करता है?”

“हमारा क्या जी?” सुरैया ने दुःख से कहा, “न जाने इतना भी कैसे पढ़ गए। अब्जा की हिम्मत थी, नहीं तो अम्मी हमेशा कहा करती थी, ‘हम क्या हिंदू हैं जो अपनी लड़कियों को पढ़ा-लिखाकर आजाद कर दें। हमारी लड़कियां तो बुरके में बद रहती हैं।’ और सच भी है, अनीला। क्या हुआ पढ़कर? वही बावचीखाना, वही झाड़-बुहारी। कभी अखबार तक नहीं मिलता पढ़ने को।”

महाराजिन शरबत ले आई। एक गिलास सुरैया को देकर अनीला बोली, “बात तुम ठीक कहती हो, पर तुम्हारी क्यों, हर कहीं यही हालत है।”

“नहीं अनीला!” सुरैया ने एक सांस में आधा गिलास खाली करने के बाद कहा, “तुम लोग आजाद हो। देखो न पढ़े जा रही हो। मैं तो पढ़ लू भला!”

“पर सुरैया, सभी हिंदू ऐसे नहीं हैं।”

“सभी तो कहीं भी एक-से नहीं होते।” सुरैया ने जवाब दिया, “पर फिर भी तुम्हे याद है न शीला थी हमारे साथ। कितनी गरीब थी, पर पढ़े जा रही थी। फस्ट आती थी।”

अनीला हँसी, “शीला गुप्ता?”

“हा।”

“वह अब तीन बच्चों की भाँ है।”

“सच? मियां क्या करते हैं?”

“जी. एच क्यू. में हैं।”

“बस?”

“हाँ, सुरैया।”

“कैसी हांशियार लड़की थी। मास्टरनियां हाथों पर रखती थी। हर मजमून में अब्बल। तो भई, हमें अफसोस नहीं। किसी तरह पास हुए थे। भई, तुम जनीला को जानती होगी न?”

“हाँ, हाँ, क्यों।”

“बेचारी का इंतकाल हो गया।”

“कैसे?”

“मरा बच्चा हुआ था।”

अनीला का दिल धक-धक कर उठा। बोली, “बड़ी गरीब लड़की थी।”

“हाँ, अनीला!” सुरैया ने दर्द-भरी बाणी में कहा, “गरीबी ही उसे खा गई। आजकल की महंगाई तुम जानती ही हो। गरीब को ठीक-ठीक दवा भी नहीं मिली। मरने से पहले पागल हो गई थी।”

“ओह, परमात्मा! सच?”

“हा, अनीला। बेचारी तीन बच्चे छोड़ गई हैं। वे भी मर जाते तो अच्छा था। कौन उन्हें संभालेगा, बशीर मियां कह रहे थे—खुदा की मरजी है। अब भी जो ठीक होगा, करेगा। पर अनीला, मुझे तो मालूम होता है, खुदा कुछ नहीं करता।”

“बेशक, सुरैया!” अनीला बोली, “खुदा कुछ नहीं करता। करता तो आदमी है। अपने ऐब छिपाने के लिए वह खुदा की आड़ लिया करता है। लेकिन, सुरैया, तुमने नहीं बताया।”

“क्या?”

“तुम्हारी गोद खाली है।”

सुरैया की आंखें सहसा गीली हो गई। गहरी सास खीचकर बोली, “अनीला, एक लड़की हुई थी, पर तीन महीने की होकर चल बसी। बड़ी प्यारी थी।”

“औलाद प्यारी ही होती है।” अनीला ने सहानुभूति से भरकर कहा, “पर दुखी क्यों होती हो? और भी।”

बात काटकर सुरैया बोली, “अच्छा अनीला, तुम्हारा मन नहीं करता?”

“काहे को?”

“जैसे जानती नहीं!”

अनीला मुस्करा पड़ी और सुरैया के ऊपर झुकती-झुकती बोली, “जानती क्यों नहीं! और मैं बताऊं, मन करता भी है।”

“फिर शादी क्यों नहीं करती?”

“मन करता है तो क्या शादी कर लेनी चाहिए? मन जिस काम को कहे, वह क्या सभी किया जाता है?”

सुरैया को यह दार्शनिकता अच्छी नहीं लगी, बोली, “अनीला, औरत तो आखिर शादी करती ही है।”

“न करे तो!”

“यह कैसे हो सकता है? नहीं करेंगी तो इधर-उधर.”

इसी समय बाहर शोर मचा। बच्चों की किलकारियाँ और बूटों को आवाज पास आने लगी। सहसा सुरैया कूटकर उठी। शीघ्रता से उसने बुरका उठाया और नकाब डाल ली। पलक मारते ही यह सब हा गया। अनीला ने चकित होकर देखा—प्रदीप अदर चला गया है। समझकर वह खिलखिलाकर हँसी, बोली, “सुरैया, यह तो प्रदीप था, मेरा छोटा भड़या।”

सुरैया ने अब नकाब पलटा। यद्यपि अस्तव्यस्त हो रही थी, पर मुस्करा पड़ी। शरारत से बोली, “हम लोगों के सिर्फ मां-जाया भई होता है।”

“पर,” अनीला ने कहा, “तुम्हारी तो शादी हो चुकी है।”

“हाँ, यह तो ठीक है, लेकिन आदत पड़ी हुई है।”

“भई, ऐसी भी क्या आदत?”

“सच अनीला। बहुत बार जी करता है, इस बुरके को फाड़कर फेंक दूँ, पर हाथ उठते-उठते रुक जाते हैं।”

तब तक बच्चे अंदर आ गए थे। दस वर्ष की लंबी, सुंदर प्रमीला और पांच वर्ष का गोलमटोल कुलदीप। सुरैया को देखकर दोनों ठिठक गए। अनीला ने कहा, “नमस्ते करो, जीजी है।”

प्रमीला ने हाथ जोड़कर लजाते हुए कहा, “नमस्ते।”

सुरैया ने उसे प्यार से थपथपाया। इधर कुलदीप महाशय अनीला के पास जाकर बोले, “जीजी! ये कौन हैं?”

“जीजी।”

“कौन-सी? कानपुर वाली?”

“ना, ना। ये तो यहीं रहती है।”

“अब तक क्यों नहीं आई थीं?”

“धर का पता नहीं था।”

“अब कैसे लगा?”

सुरैया को अटपटी बोली में उसके प्रश्न बड़े प्यारे लगे। बोली, “हमारे पास आओ।”

“नहीं आते।”

अनीला ने शीघ्रता से कहा, “ना कुलदीप, ऐसे नहीं कहते। बड़ी जीजी है।”

कुलदीप मुह बनाकर बोला, “बड़ी जीजी कैसे है, हमारे लिए चीजी तो लाई नहीं।”

सुनकर अनीला और सुरेया खिलखिलाकर हँसी। फिर अनीला ने कहा, “अच्छा, अच्छा महाशय! जाओ देखो, खाना बना कि नहीं। तुम भी जाओ प्रमीला। अम्मा तो आ गई न?”

“हा, रसोई में है।”

तभी सुरेया चौककर बोली, “अरे, तुम्हारी अम्मा जी से तो मिली नहीं।”

अनीला ने कहा, “वे रसोई में चली गई हैं। खाना उन्हें अपने हाथ से बनाना अच्छा लगता है। मैं बुलाती हूँ।”

“नहीं, मैं ही चलती हूँ। मुझे तभी जाना चाहिए था।”

“अरे, बैठो भी।”

“ऊहू। बैठकर क्या करूँगी?” सुरेया बोली, “तुम्हारी रसोई देखूँगी। वे कहते थे, हिंदुआनियां सब्जी बड़ी अच्छी पकाती हैं। कई बार वे हिंदू दोस्तों के घर जाकर खाते हैं... देखूँगी, तुम लोग आखिर क्या करती हो?”

अनीला हँस पड़ी पर दूसरे ही क्षण सहसा जैसे मन मुरझा गया। हँसी रुक गई। उसने कहा...

पर सुनने को सुरेया वहां नहीं थी। वह शीघ्रता से कमरे से बाहर चली गई। देखा, आगन मे सामने जो पक्की रसोई है उसी मे अनीला की मा बैठी हैं। वह कढ़ाई मे पूरियां तल रही हैं। पास दूसरी अगीठी पर सब्जी पक रही है। जिसकी सोधी-सोधी सुगंध चारों और फैली है। सब कहीं स्वच्छता, सब कहीं सामान समुचित रूप से रखा है। क्षण-भर मे सुरेया ने सब कुछ देख डाला और शीघ्रता से रसोई में अम्माजी के पास पहुँचकर कहा, “अम्माजी, सलाम।”

जैसे भूकंप हुआ। अम्माजी हठात् कांप उठी। दृष्टि डंठाकर सुरेया को देखा। हाथ से कौचा झनझनाता हुआ धरती पर गिर पड़ा। वह लड़खड़ाती हुई उठी। कढ़ाई मे ठेस लगी, वह उलट गई, तपता हुआ घी चारों ओर बिखर गया और देखते-देखते वे चीखकर वहीं गिर पड़ीं।

सुरेया बराबर रोए चली जा रही थी। उसकी हिचकियां बंद ही नहीं होती थीं। दुखी और त्रस्त अनीला ने बहुत समझाया। उसकी आंखों पर अपना मुह रखकर उसे प्यार से धपथपाती हुई बोली, “मेरी अच्छी, सुरेया। मेरी प्यारी बहन, चुप कर ..”

सुबकते-सुबकते सुरेया बोली, “अनीला, गलती मेरी थी। मैं रसोई में क्यों गई? मेरी वजह से अम्माजी..”

“चुप-चुप, सुरेया!” अनीला ने उसके गले में बांह डाल दी, “अम्माजी को

कुछ नहीं हुआ है। जरा पैर जल गया है, बस। सुरैया! सुरैया! तुझे मेरी कसम। तू यह बात भूल जा। मैं कल तेरे पास आऊँगी। कल ही सबके साथ हम मिलकर खाना बनाएगे और मैं तुझे तरह-तरह से सब्जी बनाना बताऊँगी। ले बस, चुप हो जा। तू मेरी बहन है न?"

सुरैया ने किसी तरह अपने को शांत किया। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। मुख मुरझा गया था और दिल दुःख से फटा पड़ता था। यह किसी भी तरह वहाँ से भाग जाना चाहती थी। अनीला भी कम दुखी नहीं थी, पर ऊपर से वह शात थी। उसने सुरैया को छाती में भर लिया और हँसकर बोली, "जो भी हो, तुम्हें शांत होना होगा, मेरी बहन। मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है।"

सुरैया ने धीरे से कहा, "मैं ठीक हूँ।"

"तो हँसो।"

" "

"हँसो, मेरी प्यारी बहन।"

सुरैया हँस पड़ी। उसकी बह सजल मुसकराहट अनीला ने हँसकर उसे चूम लिया।

तभी बाहर जूतों की आवाज हुई। अनीला के पिता अस्पताल से लौट आए थे। उन्होंने मुसकराते हुए कहा, "अनीला बेटी, तुम्हारी माँ ठीक हैं। रात तक लौट आएंगी। कहलाया है, सुरैया को तब तक न जाने देना।"

## मेरा बेटा

सिविल अस्पताल का नया सर्जन डॉक्टर हसन जैसे ही कमरे में दाखिल हुआ, उसने किबाड़ बद कर लिए। ठड़ी हवा का झोका, जो साथ-साथ अदर बुस आया था, क्षण-भर के लिए उसके पिता को कपाता हुआ गायब हो गया। डॉक्टर ने एक गहरी सांस खीची और हाथ के दस्ताने उतारते हुए कहा, “अब्बा! बड़ी खतरनाक हालत है।”

अब्बा जो पलग पर लेटे थे, ‘हू’ करके रह गए। डॉक्टर ने चुपचाप ओवरकोट उतारा और खूटी पर टांग दिया, फिर अंगीठी के पास जा खड़ा हुआ। बाहर सनसन करती हुई हवा चल रही थी और उस ठड़ को, जिसके थपेड़े खाते हुए वह अभी लौटा था, याद करके उसे अब भी कंपकंपी आ जाती थी। एकाएक अब्बा बोल उठे, “अब तक कितने आदमी मर चुके होंगे?”

डॉक्टर ने जवाब दिया, “अस्पताल में कुल तीस लाशें आई हैं।”

“और जख्मी?”

“सौ हो सकते हैं।”

“मुसलमान ज्यादा होंगे?”

डॉक्टर क्षण-भर रुका, फिर हाथों को मलता हुआ बोला, “कुछ नहीं कहा जा सकता।”

“फिर भी?”

वह झिझका जैसे कुछ सोचना चाहता हो। अब्बा तब तक उसके मुह की तरफ देखते रहे। उसने हाथों को आग के आगे किया और कहा, “हो सकता है, हिंदू ज्यादा होंगे।”

फिर कई क्षण कोई नहीं बोला। सिर्फ हवा दरवाजे पर थपेड़े मारती रही। अब्बा के मुख पर अनेक भाव आए और गए, उनके तने हुए चेहरे की नसें और भी तन गईं। एकाएक बैठे-बैठे उन्होंने कहा, “तो कोई उम्मीद नहीं?”

“किस बात की?” हसन ने चौंककर पूछा।

“फैसले की।”

“फैसला?” डॉक्टर जबरदस्ती मुस्कराया और फिर जोश में बोला, “अब्बा! हजार साल इस तरह लड़ते रहने पर भी फैसला नहीं हो सकता। असली बात यह है कि वे फैसला करना ही नहीं चाहते, वे लड़ना चाहते हैं और लड़ते रहेंगे, इसीलिए वे एक-दूसरे की बात समझने से इनकार करते हैं।”

“इनकार करते हैं?”

“हा अब्बा, मैं तो इसे इनकार मानता हूँ। समझना चाहे तो झगड़ा ही क्या?”

अब्बा ने एक बार अपने बंटे को देखा, फिर कहा, “शायद तुम ठीक कहते हो।”

“शायद नहीं अब्बा, मैं बिलकुल ठीक कहता हूँ।”

तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। डॉक्टर चौका।

पूछा, “कौन हैं?”

जवाब आया, “जी, अस्पताल मे डॉक्टर शर्मा ने आपको बुलाया है।”

“क्यों?”

“एक नया केस आया है, साब।”

“तो?”

“साब, उन्होंने कहा है, जख्मी की हालत खतरनाक है, आपका आना जल्दी है।”

अब्बा ने सुनकर गुस्से से कहा, “क्या वाहियात बात है, अभी आए हो। खाना न पीना। मरने दो उसको।”

डॉक्टर बोला, “मरना तो है ही, अब्बा, आज मौत के फरिश्ते ने हम सबको अपने परो के साथ में समेट लिया है।”

और फिर किवाड़ खोले, ठंडी हवा तेजी से अंदर घुसी। उसने कांपते हुए कहा “खाना खा सकता हूँ?”

आने वाला अस्पताल का जमादार था, सिकुड़ते हुए जवाब दिया, “साब, वह तो जल्दी बुलाते हैं।”

डॉक्टर ने लंबी सांस खीची, कहा, “अच्छा तो कह दो, अभी आता हूँ।” और उसने जल्दी से किवाड़ बंद कर लिए। सीधे अंगीठी के पास आया और कहा, “खून जमा देने वाली सर्दी पड़ रही है, और वे लोग लड़े जा रहे हैं, बहशी, हैवान, दोजखी, कुत्ते।” साथ ही साथ दस्ताने पहनता रहा, फिर ओबरकोट उठाया और चलते-चलते कहा, “मैं कहता हूँ, अब्बा, वे हैवान हैं। वे फैसला नहीं कर सकते।”

अब्बा अगरचे क्रोध में भरे हुए थे पर न जाने क्या हुआ कि हसन की बात सुनकर हँस पड़े। बोले, “हैवान बड़ी जल्दी फैसला करता है, बेटे।”

वह कुछ जवाब देता कि इस बार अदर के दरवाजे पर आहट हुई। वह मुड़ा, देखा—सामने उसकी बीबी खड़ी है। उसने गरम शाल लपेट रखी है और उसके सुदर मुख पर क्रोध-भरी मुसकराहट है। पास आने पर वह कुछ नारजी से बोली, “अभी आए और चल दिए, क्या मुसीबत है?”

“खुदा जाने, क्या होने वाला है, बेगम।”

“खाना नहीं खाओगे?”

कसे खाऊ बुलावा आ गया ह

बगम के हाथ म कुछ बिस्कुट थे उन्हे डॉक्टर के आवरकोट की जेब में डालते हुए कहा चाय तो पी लेत

डॉक्टर मुस्कराया, बाला, तुम बहुत अच्छी हो, बेगम.

और फिर उसके मुंह पर आई हुई एक लट को पीछे करते हुए वह जल्दी से मुड़ा और कहा, “अब नही रुक सकता, बेगम। देर हो गई तो शायद पछताना पड़ेगा।”

बेगम ने कुछ जबाब नही दिया, उसका सुदर मुखड़ा परेशानी से उबास हो गया था। दुखी मन से उसने डॉक्टर को जाते देखा और देखती ही रह गई। डॉक्टर दरवाजा खोलकर जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ बाहर निकल गया। बूटों की तेज आवाज के साथ सनसनाती हुई हवा एक बार तेजी से उठी और फिर धीमी पड़ने लगी। बटकनी लगाकर अब्बा फिर पलंग पर आ बैठे। तभी पास के कमरे से एक हल्की लड़खड़ाती हुई आवाज आई। डॉक्टर हसन के बाबा ने पूछा, “अनवर, हसन आया था.. अब फिर कहाँ गया?”

“अस्पताल।”

“क्यो?”

“क्यो क्या। कोई और जख्मी आ गया है। वे काफिर न जीते हैं, न जीने देते हैं।”

बात इतनी तल्खी से कही गई कि बाबा कुछ जबाब नहीं दे सके। नौकर पास बैठा था। उससे कहा, “जा, पूछ तो उसने कुछ खाया कि नही और कुछ न हो तो बिस्कुट बगैर लेकर वहीं दे आ, जा .”

उधर डॉक्टर हसन जैसे ही अस्पताल में दाखिल हुआ, डॉक्टर शर्मा ने बेचैनी से कहा, “हसन! तुम आ गए, जल्दी करो, वह कमरा नंबर 6 मे है। और आपरेशन का सामान तैयार है।”

हसन ने जरा शिकायत-भरे ढग से कहा, “ऐसी क्या बात है? खाना तक नही खाने दिया।”

“क्या करूं, हसन, हम लोगो का काम ही ऐसा है।”

“केस क्या बहुत सीरियस है?”

“हाँ, केस बहुत सीरियस है हसन, उसके बदन का कोई हिस्सा ऐसा नही है, जिस पर चोट न आई हो। चोट भी ऐसी है कि देखकर दिल कांप उठता है।”

“होश मे है?”

“आह, होश? मुझे अचरज है कि वह जिदा कैसे है?”

“क्या उसका जिंदा रहना जरूरी है?” हसन ने उसी तरह कहा, “उसके मर जाने पर क्या दुनिया मिट जाएगी?”

शर्मा बोला, “मैं जानता हूँ, पर जब तक वह मर नहीं जाता, तब तक उसे जिदा रखने का बोझ हम पर आ पड़ा है, क्या करें?”

वे चल रहे थे और बाते भी करते जाते थे। वे घायलों के वार्ड में दाखिल हो चुके थे और दर्द-भरी चीख-पुकार सुनाई पड़ने लगी थी। दरवाजा खोलते-खोलते हसन ने पूछा, “यह है कौन?”

“एक बूढ़ा हिंदू है।”

“यही का रहने वाला है?”

“नहीं, परदेशी है। जेब में जो कागज मिले हैं उनसे पता लगता है कि वह कानपुर का रहने वाला है और उसका नाम रामप्रसाद है।”

हसन ने धीरे से दोहराया, “रामप्रसाद, कानपुर, बस?”

“बस।”

उन लोगों ने कपड़े बदले और फिर नर्सों और कपाउडरों से धिरे हुए उस जख्मी के ऊपर झुक गए, जो बीसों जख्म खाकर आपरेशन की मेज पर बेहोश पड़ा हुआ था। उसकी सांस बहुत आहिस्ता-आहिस्ता चल रही थी और अधखुली आंखे दिल में डर पैदा करती थीं।

आपरेशन खत्म करके जब वे बाहर निकले तो पूरे पांच घण्टे बीत चुके थे। वे बेहद थके हुए थे और उनके तमाम बदन में दर्द हो रहा था। वे उस हवा में इतने ढूब चुके थे कि दूर तक साथ-साथ चलते रहने पर भी वे एक-दूसरे से नहीं बोले। शाम हो चुकी थी, पर हवा की सनसनाहट उसी तरह गूंज रही थी। उसके थपेडे खाकर वे कभी कोट का कालर ठीक करते, कभी कदम तेज करके गरमी पैदा करना चाहते। उसी वक्त एकाएक डॉक्टर शर्मा ने धीरे से कहा, जैसे नींद में बड़बड़ते हों, “कैसा अजीब केस है!”

डॉक्टर हसन ने भी धीरे से कहा, “पर मुझे खुशी है, हम उसे बचा सकेंगे।”

“शायद।”

“नहीं, शर्मा,” हसन ने पूरे भरोसे से कहा, “मुझे यकीन है, वह बच जाएगा।”

डॉक्टर शर्मा ने हसन की ओर देखा, फिर मुसकराकर कहा, “तुम्हें यकीन है, क्योंकि तुमने उसके लिए परिश्रम किया है।”

“वह केस ही ऐसा था, उसे देखकर मुझे लगा कि इसे बचाना चाहिए।”

“क्योंकि उसके बचने में तुम्हारी विद्या का इम्तहान है।”

डॉक्टर हसन ने एकाएक डॉक्टर शर्मा को देखा, उसे जान पड़ा कि वह ठीक कह रहा है, केस जितना खतरनाक था, उसको बचाने का खयाल भी उतना ही ज्यादा था।

यह जानकर डॉक्टर हसन को गहरा संतोष हुआ और उसने खुश होकर कहा, “मेहनत तो तुमने भी की है, शर्मा!”

पर तुम्हारी तरह नहीं

हसन ने इस बात का जवाब नहीं दिया, पहले की तरह चुपचाप चलता रहा। उसका घर सामने दिखाई पड़ रहा था। उसी को देखकर वह बोला, “मैं समझता हूं, घर जाने से पहले तुम एक प्याली चाय पीना पसंद करोगे।”

शर्मा ने मुसकराकर कहा, “जरूर करूँगा। सारा बदन टूट रहा है।”

हसन हँसा, बोला, “और इस बात की क्या गारंटी है कि हमें अभी फिर उसी कमरे में नहीं लौटना पड़ेगा?”

“हा, कौन कह सकता है?”

“लेकिन शर्मा, उस आदमी का पूरा पता मालूम होना चाहिए। देखने में किसी बड़े घर का जान पड़ता है।”

शर्मा ने उसी तरह कहा, “मैंने पुलिस को पूरी रिपोर्ट दे दी है। वह पता लगा लेगी और न भी लगे तो क्या है, न जाने कौन-कौन मरता है।”

“वह नहीं मरेगा, शर्मा, उस पर आज मैंने बाजी लगाई है।”

शर्मा मुसकराया, “तब और भी जरूरत नहीं है।”

घर आ गया, किवाड़ खोलते हुए डॉक्टर हसन ने कहा, “बैठो शर्मा, मैं चाय के लिए कहता हूं।”

और फिर अब्बा की ओर मुड़कर कहा, “वाकई वह बड़ा खतरनाक केस था, लेकिन उम्मीद है कि वह बच जाएगा। शर्मा और मैं अब तक उसी पर लगे थे।”

शर्मा ने हसन के अब्बा को आदाब अर्ज किया। जवाब देकर अब्बा बोले, “कौन है?”

“कोई बड़ा आदमी है।”

“एक बूढ़ा हिंदू है। अच्छे घर का जान पड़ता है।”

“यहीं का रहने वाला है?”

शर्मा ने कहा, “जी नहीं, परदेशी है। जो कागजात उसकी जेब में मिले हैं, उनसे पता चलता है कि वह कानपुर का रहने वाला है और उसका नाम रामप्रसाद है।”

अब्बा एकाएक चौंके, “क्या...क्या बताया...रामप्रसाद. कानपुर?”

“जी।”

“और कुछ?”

“जी नहीं।”

“उसके साथ कोई और नहीं है?”

“जी नहीं।”

हसन लौट आया था और अब्बा की बेचैनी को ध्यान से देख रहा था, बोला, “क्या आप उसे जानते हैं?”

अब्बा का चेहरा तन चला था और उनकी आँखों में गुस्से की हल्की लकड़ीं

उभर आई थी। उन्होंने अनजाने ही तल्खी से कहा, “बह मरा नहीं है?”

शर्मा ने जवाब दिया, “मरने में कुछ कसर तो नहीं थी, परंतु डॉक्टर हसन ने अपनी होशियारी में उसे बचा लिया है।”

अब्बा ने अब हसन की तरफ गौर से देखा और देखते रहे। हसन को उनका यह व्यवहार बहुत अजीब-सा मालूम हुआ। उसने अब्बा के पास जाकर पूछा, “अब्बा! क्या आप उन्हे जानते हैं?”

जैसे बिना सुने उन्होंने कहा, “रामप्रसाद कानपुर उसके मुंह पर ढाई तरफ एक मस्ता है?”

“है।”

“उसका रंग गोरा है और उसकी शक्ल .”

“उसकी शक्ल?” हसन ने एकाएक अब्बा की तरफ देखा। जैसे बिजली कौधी हो, आपरेशन करते समय उसके मन में यह विचार आया था कि इसकी शक्ल तो अब्बा से मिलती है। अब्बा उसी तेजी से बोले, “हाँ, मेरी तरफ देखो, उसकी शक्ल कुछ-कुछ मुझसे मिलती है?”

हसन कांपा, “अब्बा ”

अब्बा अपनी सुध-बुध खो रहे थे। उनके चेहरे की झुर्रियों में नफरत उभरती आ रही थी। उन्होंने जलती हुई आँखों से हसन की तरफ देखा और कहा, “हा, मैं कानपुर के रामप्रसाद को जानता हूँ और मैं उससे नफरत करता हूँ.”

हसन जैसे पागल हो चला था, “आप उससे नफरत करते हैं, क्यों...”

“हा, मैं उससे नफरत करता हूँ और उसके मरने का मुझे जरा भी रंग नहीं है।”

वे बुरी तरह कापने लगे थे। उनकी आँखों में क्रोध और उत्तेजना के कारण पानी भर आया था। पर हसन को जैसे कुछ याद आ रहा था। कुछ, वह जो प्यारा होकर भी कड़वा था, जो उसके अब्बा की इस बेचैनी का कारण था। ‘अब्बा की बेचैनी।’ वह आहिस्ता से अपने-आपसे बोला, ‘नहीं, यह केवल अब्बा की बेचैनी नहीं है, यह तो..’

ठीक उसी समय अंदर के कमरे के किवाड़ भड़भड़ाकर खुल गए। सबकी नजरे उस ओर उठीं। देखा—नौकर के कंधे पर हाथ रखे डॉक्टर हसन के बूढ़े दादा अंदर चले आए हैं। उनके बाल सफेद हो चुके थे और कमर झुक गई थी। उनके हाथ-पैर लड़खड़ाते थे और आँखें देखने से इनकार कर चुकी थीं। उन्हें देखकर हसन के अब्बा घबरा उठे और दोनों हाथों से थामकर उन्हे पलंग पर ले आए। बोले, “आज आप इतनी सर्दी में क्यों उठे?”

दादा ने कुछ नहीं सुना और लड़खड़ाते हुए कहा, “अनवर, तुमने अभी किसका नाम लिया था? कौन आया है?”

“कोई नहीं, अब्बा!” हसन के अब्बा अनवर ने शांति से जवाब दिया, “यहाँ तो हसन के साथी शर्मा माहब बैठे हैं।”

“नहीं अनवर, मैंने अच्छी तरह सुना है, तुम उसका नाम ले गए थे।”

डॉक्टर शर्मा एक अर्जीव भूलभुलैया में फँस गए थे। वे कभी हसन की ओर देखते, कभी अब्बा को और कभी बाबा को। पर उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। हसन चुपचाप जेब में हाथ डाले बाबा पर नजर गढ़ाए हुए था। उसके मुख पर अब थकान नहीं थी, बल्कि एक गहरे दर्द ने उसे परेशान कर दिया था। इसके खिलाफ, उसके अब्बा की नफरत गहरी होती जा रही थी और बाहर हवा उसी तेजी से सर पटक रही थी। अनवर ने अब्बा को आराम से सहेजकर पत्तग पर लिटा दिया और फिर धीरे-धीरे चारों ओर से कंबल ढकने लगे।

दादा उसी तरह बोले, “अनवर, तू बोलता क्यों नहीं?”

“अब्बा”

“हाँ, वह कहा है? तू उसका नाम क्यों ले रहा था?”

अनवर की आवाज कुछ लड़खड़ाई, उन्होंने कहा, “अब्बा, वह यहा नहीं आया।”

“तो...?”

“अस्पताल मे है।”

दादा की आवाज एकाएक और भी दर्दनाक हो उठी, “क्या..क्या कहा.. अस्पताल मे?..क्यों..?”

जब हसन से नहीं रहा गया, तो आगे बढ़कर उसने कहा, “हाँ दादा, कानपुर वाले रामप्रसाद अस्पताल में पड़े हैं, जब्ती हो गए थे, लेकिन अब बेहतर हैं।”

सुनकर दादा ने कंबल को दूर फेंक दिया और लड़खड़ाते हुए बोले, “रामप्रसाद जन्मी हो गया, कैसे हुआ किसने किया. ?”

“शहर में जो दगा हो रहा है, उसी में..”

“मुसलमानों ने उसे मारा!” दादा ने अब सब कुछ समझकर कहा, और क्षण-भर के लिए ऐसे हो गए जैसे प्राणों ने साथ छोड़ दिया हो। फिर उनकी आखों से आंसू बहने लगे। आवाज भरा गई। बोले, “हसन, उसे मुसलमानों ने मार डाला और तुमने मुझे बताया भी नहीं, तुमने..”

“दादा, मैं उनको जानता नहीं था।”

“पर तूने कहा, वह अभी जिंदा है?”

“हाँ, दादा।”

“अस्पताल मे?”

“हाँ, दादा।”

“तो हसन, मेरे बच्चे!” उन्होंने उठने की कोशिश करते हुए कहा, “तू मुझे

उसके पास ले चल, मैं एक बार उसे देखूगा, वह मेरा बेटा है, मेरा बड़ा बेटा  
कहते-कहते दादा फूट-फूटकर रोने लगे। उनसे उठा नहीं गया। कटे हुए पेढ़  
की तरह वही लुढ़क गए।

अनवर ने उन्हें देखा और पुकार उठे। “हसन! जल्दी करो अब्बा को गश आ  
गया है।”

हसन न कांपा, न घबराया। आगे बढ़कर उसने अलमारी में से दवा निकाली  
और उसे प्याले में डालते-डालते बोला, “शर्मा, क्या तुम इंजेक्शन तैयार नहीं कर  
दोगे?”

“जरूर कर दूगा!” शर्मा जो अब समझ गया था, बोला और उठकर स्प्रिट से  
सुई साफ करने लगा। हसन ने दवा बाबा के गले में डाली। फिर पुकारा “दादा!”  
कोई आवाज नहीं।

“दादा आ.”

अनवर ने पुकारा, “अब्बा।”

धीरे-धीरे उनको होश आया। होठ फड़फड़ाए। बोले, “कहाँ है वह? मेरा  
बेटा.. मेरा बेटा..!”

“अब्बा।”

“मैं उसके पास जाऊगा।”

हसन ने कान के पास मुह ले जाकर धीरे से कहा, “अभी चलते हैं, दादा।  
आप जरा अपने को संभालिए तो ..”

उन्होंने उसी तरह कांपते हुए कहा, “मैं होश में हूं, मेरे बच्चे। मैं उसके पास  
जाऊंगा, आखिर वह मेरा बेटा है, कोई गैर नहीं। मैं मुसलमान हूं और वह हिंदू। वह  
मुझसे, मेरे बच्चों से नफरत करता है, परं पर वह भी मेरा बच्चा है। मैं उससे नफरत  
नहीं करता। हसन.. हसन !”

“हाँ, दादा!”

“हसन! मैं उससे पूछूँगा, मैं मुसलमान हो गया तो क्या हुआ, हमारा बाप-बेटे  
का नाता तो नहीं टूट सकता। आखिर उसकी रगों में अब भी मेरा खून बहता है, इतना  
ही जितना अनवर की रगों में बहता है, शायद ज्यादा..!”

उनकी आवाज फिर धीमी पड़ रही थी। वह रो-रो उठते थे। दोनों डॉक्टर उनके  
ऊपर झुके हुए थे और अनवर ने उनकी नाड़ी संभाल रखी थी।

बाहर अधेरा बढ़ा आ रहा था और हवा शांत पड़ रही थी। अंदर बेगम आखों  
में आसू भरे, दुखी दिल से चाय लिए बैठी थी और वह चाय न जाने कब की ठंडी  
होकर काली पड़ गई थी।

